चैतन्य

राष्ट्रीय जीवनचरित

चैतन्य

दिलीप कुमार मुखर्जी

अनुवाद

कमलेश

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2467-5

पहला संस्करण : 1972
तीसरी आवृत्ति : 1998 (*शक 1920*)
© दिलीप कुमार मुखर्जी, 1972
रु. 25.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली - 110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

1

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चैतन्य सर्वाधिक तेजस्वी हिंदू संतों में से एक हैं और बंगाल तथा भारत की सर्वश्रेष्ठ संतानों में उनका स्थान है। वैष्णव नवोदय का कुछ शतियों पहले अंकुरित हुआ शक्तिशाली वृक्ष चैतन्य के जीवन और व्यक्ति के रूप में कुसुमित हुआ। तब से निःसरित सुगंध आज सैकड़ों वर्ष बाद भी हिंदू हृदयों को सुवासित कर रही है। चैतन्य महाप्रभु या भगवान गौरांग के नामों से भी प्रसिद्ध चैतन्य का संदेश और अभिप्राय आज भी वैष्णव हृदयों को आनंद, आस्था, और प्रेम से प्रेरित करता रहता है।

चैतन्य के प्रादुर्भाव से तुरंत पूर्व ही शताब्दियों से भारतीय इतिहास में अस्त-व्यस्तता का दौर चल रहा था। हिंदुकुश पार से विदेशी गिरोहों के झुंड-पर-झुंड आए और लूट-पाट, बलात्कार तथा कत्लेआम का नग्न-नृत्य करने के बाद देश के स्वामी बनकर बैठ गये। उनकी तलवारें म्यान के बाहर ही रहीं। जब वे देशी जनता से नहीं लड़ते होते तब आपस में ही लड़ा करते थे। लश्करों की कूच और युद्ध की चीखों से गांवों की शांति छिन्न-भिन्न हो गयी थी। खुद बंगाल में हिंदू शासन, बारहवीं शताब्दी के अंत में तुर्कों के हाथ, स्थानीय शासक लक्ष्मण सेन की हार के साथ खत्म हो गया। बंगाल इस्लामी साम्राज्य का अंग हो गया।

हिंदू जीवन और संस्कृति का पतन इसका अपरिहार्य परिणाम था। हिंदू अपने ही घर में परदेशी बन गये। सब कुछ सहने पर ही उनकी जान, संपत्ति, और धार्मिक मान्यताएं सुरक्षित रह सकती थीं। पराजय की भावना हावी हुई। जनता का उत्साह शिथिल हो गया। उनका विश्वास कुम्हला गया।

इन दुर्भाग्यों के साथ ही, इनके कारण या इनके बावजूद धार्मिक नवोदय भी आया। बारहवीं शती में रामानुजाचार्य हुए जिन्होंने सगुण, स्वकीय ईश्वर के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और उपासना के लिए भक्ति-मार्ग का संदेश दिया। उनके बाद हुए वल्लभाचार्य, रामानंद और दूसरे संत जिन्होंने भक्ति आंदोलन को और आगे बढ़ाया। बंगाल में जयदेव ने अपनी अमर कृति **गीत-गोविंदम** में राधा और कृष्ण का प्रेम-गान किया। विद्यापति और चंडीदास ने भी यह विषय अपनाया। विद्यापति की मैथिली में

लिखी गयी **पदावली** और चंडीदास का **श्रीकृष्ण कीर्तन** जहां भी गाये जाते थे, लोकप्रिय हुए। इस तरह गीत के पंखों पर उड़ान भरता भक्ति आंदोलन गौड देश में भक्तिवान बना। हिंदू जनता को कृष्ण कीर्तन में अपनी भावनाओं और उमंगों को अभिव्यक्त करने का मार्ग मिला, अपने कष्टों से — प्रायः एक ही संभव प्रकार की — मुक्ति मिली और साथ-ही-साथ अपने ईश्वर से सामीप्य स्थापित करने की एक विधि मिली।

बारहवीं शताब्दी के बाद वैष्णव मत बंगाल का यदि सर्वाधिक व्यापक भी नहीं, तो भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण धार्मिक आंदोलन रहा। आराधना की रीति के रूप में भक्ति, और भक्ति के मुख्य अभिव्यक्ति रूप कीर्तन अब जम चुके थे।

कुछ दूसरे मत, पंथ, और धार्मिक रीति-रिवाज भी जरूर वर्तमान थे। एक तरह का बौद्ध धर्म भी प्रचलित था जिसके वज्रयान और सहजयान संप्रदाय और उनकी विलक्ष्य गुह्य रीतियां थीं। घिनौनी, बल्कि विकृत क्रियाओं वाली तंत्र साधना भी थी। अलौकिक शक्तियों को प्राप्य बनाने वाला इसका विलक्षण सिद्धांत अपने विशेष आकर्षण के कारण कुछ समय तक व्यापक पैमाने पर अपनाया गया। लेकिन समाज पर समग्रतया इनमें से किसी भी मत या पंथ का गहरा प्रभाव नहीं रहा। इनकी उपयोगिता बहुत कम थी। वे समय की मांग को पूरा नहीं कर पाए। उन्हें वास्तव में मुश्किल से ही धर्म की संज्ञा दी जा सकती है। यदि वे कुछ थे तो आत्मा की पथभ्रष्टता के, मानव आत्मा में पैठ चुके पतन के लक्षण थे।

चैतन्य का जन्म-स्थान नवद्वीप इस काल में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ। यह दीर्घकाल से संस्कृत विद्या का पीठ था जहां देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। साथ ही यह परंपरानिष्ठ ब्राह्मण धर्म का भी केंद्र था जिसके अग्रणी व्याख्याता रघुनंदन थे।

तंत्र मत का प्रभाव भी यहां पर्याप्त मात्रा में था। **तंत्रसार** के लेखक कृष्णानंद आगमवागीश नवद्वीप में ही रहते थे, वैष्णव जनसंख्या में तो कम थे पर बहुत सक्रिय थे। भक्तों के घरों में समय समय पर मंडली एकत्रित होती, धार्मिक प्रवचन होते, शास्त्रार्थ होते, **भागवत** का पाठ होता। कीर्तन भी हुआ करते थे।

नवद्वीप में वैष्णव गतिविधियों के प्रेरणा-स्रोत थे प्रतिष्ठित विद्वान और श्रेष्ठ भक्त माधवेंद्र पुरी। बंगाल के वैष्णव धर्म में माधवेंद्र पुरी का नाम महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने ही अहेतुक भक्ति और प्रेम को प्राधान्य देकर सिद्धांत को नया सार और अर्थ दिया। जयदेव, विद्यापति और चंडीदास की रचनाओं में राधा-कृष्ण प्रसंग का वर्णन सौंदर्यपूर्ण था पर मूलतः शृंगारी तथा कभी कभी अपरिष्कृत था। माधवेंद्र पुरी इस प्रसंग को उच्चतर, सूक्ष्मतर धरातल पर ले गये।

माधवेंद्र पुरी के शिष्यों में उल्लेखनीय थे कमलाक्ष भट्टाचार्य, जो अद्वैत आचार्य

के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध हैं और ईश्वर पुरी जो चैतन्य के गुरु थे । अद्वैत आचार्य निकटस्थ हाट शांतिपुर के निवासी थे पर ज्यादा समय नवद्वीप में ही रहते थे । ये उत्कृष्ट विद्वान और धर्मनिष्ठ भक्त थे तथा नवद्वीप और आसपास के वैष्णवों में इनका बड़ा समादर था । ये आचार्य चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र के घनिष्ठ मित्र थे ।

मातृपक्ष और पितृपक्ष दोनों से ही चैतन्य के पूर्वजों का मूल-स्थान असम में सिलहट में था । अद्वैत आचार्य तथा चैतन्य के अनेक सहयोगी और अनुयायी भी वहीं के मूल वंशी थे । वे नवद्वीप की विद्या केंद्र तथा पावन नगरी के रूप में प्रसिद्धि के कारण इसकी ओर आकृष्ट हुए थे । सिलहट के भी पहले वे उड़ीसा में जेपुर में रहते थे और उड़ीसा में कपिलेंद्र देव के शासनकाल में कभी सिलहट गये थे ।

जन्म और शैशव

चैतन्य का जन्म नवद्वीप में सन 1486 में फरवरी महीने में हुआ था । उस समय चंद्र-ग्रहण था और नगर के धर्मनिष्ठ नर-नारी गंगा में स्नान कर रहे थे और स्तोत्र पाठ कर रहे थे जैसा कि वे ऐसे अवसरों पर प्राय: करते रहते हैं । चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र विद्याध्यायी धर्मनिष्ठ वैष्णव थे । चैतन्य की मां शचीदेवी भी अत्यधिक धार्मिक महिला थीं । साधारण साधनों वाला परिवार था ।

शिशु का नाम रखा गया था विश्वम्भर । विश्वम्भर माता-पिता की सबसे कनिष्ठ संतान थे । विश्वम्भर की पीठ पर के ज्येष्ठ भाई विश्वरूप घर त्याग कर अद्वैत-संन्यासी के रूप में आश्रमवासी हो गये थे, वे कभी वापस लौटने वाले नहीं थे । दंपति के अन्य सभी बच्चे, कम आयु में ही काल-कवलित हो गये थे । इस तरह संतानों में केवल विश्वम्भर ही बचे हुए थे, परिणामस्वरूप उन्हें अनुरागी माता-पिता का संपूर्ण लाड़-प्यार मिला । वे उन्हें प्यार में निमाई कहा करते थे और चूंकि उनका शरीर अति गौर वर्ण था इसलिए उन्हें गौर या गौरांग भी कहते थे ।

निमाई के माता-पिता उन्हें पाठशाला भेजने के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे । उन्हें डर था कि जैसा उनके भाई विश्वरूप ने किया, कहीं विद्या प्राप्त करने पर निमाई भी संन्यासी जीवन न अपना लें । इसलिए कुछ वर्षों तक निमाई को अपने घर ही छोड़ दिया गया । वे स्वस्थ, खुशमिजाज युवक के रूप में बड़े हुए और उनकी बाल-सुलभ चपलताओं से माता-पिता भी फंसे रहते थे, और पड़ोसियों को सावधान रहना पड़ता था । अपनी बाल-सुलभ चपलताओं के बावजूद अपने भोले-भाले चेहरे और प्रियकर आकृति के कारण वे हर किसी के प्रिय पात्र थे । कभी-न-कभी निमाई को पाठशाला भेजना ही था । प्रारंभिक शिक्षा के लिए उन्हें दो पंडितों के पास रखा गया । आगे की शिक्षा के मुख्यत: व्याकरण के रूप में उल्लेखनीय गंगादास की प्रवर संस्कृति पाठशाला में उन्हें दाखिल कराया गया ।

बालक ने यहां औसत से अधिक तीक्ष्ण बुद्धि प्रदर्शित की । वे व्याकरण में और कुछ हद तक साहित्य और अलंकार शास्त्र में भी निपुण हो गये । हालांकि यह नहीं कहा जा सकता कि गहन गंभीर रूप से विद्वत्ता में उनका मन था । बस यही कहा जा सकता है कि नवद्वीप जैसे विद्या-केंद्र में उस समय एक ब्राह्मण बालक के लिए जितनी शिक्षा जरूरी थी, उन्हें किंचित प्राप्त हुई ।

निमाई जब पाठशाला में थे तभी उनके पिता का देहांत हो गया और गृहस्थी की जिम्मेदारियां उनके युवा कंधों पर आ पड़ीं ।

गृहस्थ के रूप में

कुछ वर्ष बाद उन्होंने विवाह किया और गृहस्थ हो गये । उनकी पत्नी, लक्ष्मी, उसी नगर के एक विद्वान वल्लभ आचार्य की पुत्री थीं । विवाहोपरांत विश्वम्भर ने नवद्वीप के विद्वान पुरुषों की चलन के अनुसार अपनी संस्कृत पाठशाला स्थापित की और शिष्य स्वीकार करने लगे ।

जीवन की इस बेला में लापरवाह, खुशमिजाज तौर-तरीकों वाले विश्वम्भर ने धर्म की ओर कोई विशेष झुकाव प्रदर्शित नहीं किया । उनके उत्तरकालीन जीवन में जो विनय की छाप दिखती है उसके भी संकेत इस काल में नहीं दिखाई पड़ते । वे बहुत करके एक दर्पवान और अहंकारी पंडित थे, उन्हें दूसरों का उपहास करने और उनकी खिल्ली उड़ाने में मजा आता था । लेकिन जैसा उनकी जीवनियों से ज्ञात होता है, उनका अभिप्राय कभी किसी को कोई हानि पहुंचाने का नहीं था । अपनी विद्वत्ता की प्रति-श्रुति के साथ ही अपने सुंदर व्यक्तित्व और मनोहर आचरण के कारण वे नवद्वीप नगरी के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हो गये और उनकी पाठशाला भी खूब लोकप्रिय हुई ।

इसी समय के लगभग विश्वम्भर नवद्वीप छोड़कर बंगाल के पूर्वी भागों की यात्रा पर निकले । उनकी यात्रा का एक उद्देश्य अपने शिष्यों से दक्षिणा तथा पुण्यवान गृहस्थों से दान संगृहीत करना था । उन्होंने दूर दूर तक यात्राएं कीं और परिणाम संतोषजनक रहा । घर वापस आने पर उन्हें मां से पता चला कि उनकी पत्नी लक्ष्मी का देहांत हो गया है । सर्पदंश से उनकी मृत्यु हो गयी । विश्वम्भर अपनी पत्नी को संपूर्ण मन से प्यार करते थे । उनका दिल टूट गया । यह धक्का उनके लिए बहुत बड़ा था । फिर भी वे ऊपर से शांत और अविचलित रहे । यह अनुमान का विषय है कि क्या कुछ हद तक इस विछोह-शोक से बाद में उनके द्वारा सांसारिक सुखों के परित्याग की भूमि नहीं तैयार हुई ।

लक्ष्मी के निधन के कुछ ही समय बाद शचीदेवी ने बिना अपने पुत्र को पता लगने दिए ही उनके पुनर्विवाह की व्यवस्था कर दी । उनको विवाह की निश्चित तिथि को ही इसकी सूचना दी गयी । जैसी कल्पना की जा सकती है, वे इससे बहुत प्रसन्न नहीं हुए ।

उनकी पहली प्रतिक्रिया तो यही हुई कि वे सहमति न दें। लेकिन यह महसूस करके कि ऐसा करने से उनकी माता कितनी उलझन में पड़ जायेंगी, वे सहमत हो गये।

उनकी दूसरी पत्नी का नाम विष्णुप्रिया था और वे नवद्वीप के ही एक अन्य पंडित सनातन मिश्र की पुत्री थीं। चैतन्य के एक समकालीन जीवनीकार ने विष्णुप्रिया का वर्णन "सदैव ईश्वर आराधना में लगी हुई एक सदा-स्मिता, लजीली और विनयशील बालिका" के रूप में किया है। विष्णुप्रिया जो अपने यशस्वी पति के निधन के बाद काफी समय तक जीवित रहीं, बहुत थोड़े समय के लिए वैवाहिक सुख पाने वाली स्त्री थीं। लेकिन वैष्णव संप्रदाय की दृष्टि में उनका श्रद्धास्पद स्थान है।

जीवन मोड़

अपनी संस्कृत पाठशाला में कुछ समय के बाद विश्वम्भर अपने पिता का श्राद्ध कर्म संपन्न करने के लिए तीर्थ-यात्रा पर गया गये। यह तीर्थ-यात्रा उनके लिए जीवन-मोड़ सिद्ध हुई। वे गया में विख्यात संन्यासी ईश्वर पुरी से मिले जिन्हें उन्होंने अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक स्वीकार किया। इस समय विश्वम्भर की आयु लगभग 22 वर्ष थी, उस पवित्र नगरी में घटी किसी बात, किसी घटना ने उनके भीतर इतनी तीव्र धार्मिक जागृति पैदा की कि पूर्णतया रूपांतरित हो गये। कहा जाता है कि ईश्वर पुरी ने उन्हें दस वर्णों वाला कृष्ण मंत्र, दसाक्षर मंत्र दिया। लेकिन विश्वम्भर के रूपांतरण को मात्र इसी परिस्थिति से जनित नहीं कहा जा सकता। जिस आध्यात्मिक उथल-पुथल से उनका कायापलट हुआ उसका स्रोत उनके भीतर कहीं गहरे में रहा होगा। कुछ कहना मुश्किल है। चैतन्य स्वयं यह स्पष्ट नहीं कह पाये कि गया में उन्होंने क्या ऐसा देखा जिससे यह रूपांतरण आया। उनके जीवनीकारों के अनुसार गया का उल्लेख-मात्र होने पर वे अश्रु-विह्वल और मूर्छित होने लगते थे। संभव है कि नगरी के पावन वातावरण, विष्णु मंदिर, विशेषकर मंदिर के भीतर विष्णु की पद-छाप और सबसे अधिक ईश्वर पुरी से भेंट, ये सारी बातें मिलकर उत्प्रेरक बनीं।

कारण जो भी हो, उनका गया में आध्यात्मिक पुनर्जन्म हुआ। वहां से वह परिवर्तित मनुष्य होकर लौटे। पावन नगरी की यात्रा के पूर्व वे जिस तरह के दर्पी, सुंदर, तुनुक-मिजाज युवक थे, वैसे नहीं रह गये। अपने बनाव-दिखाव के प्रति उनका कोई लगाव नहीं रह गया, सांसारिक पदार्थों में उनकी कोई रुचि नहीं रही। साधारण-जन उन्हें पागल समझते थे और उनके ऊपरी आचरण से इस राय की पुष्टि ही होती थी। वे किसी कोठरी में बंद हो जाते और घंटों वहां पड़े रहते। कभी कभी वे "कृष्ण! कृष्ण!" पुकारने लगते, फिर अश्रुधार बहाने लगते या मूर्छित ही हो जाते। जैसे भगवान कृष्ण उनके संपूर्ण शरीर-प्राण में समा गये हों। वे अपनी पाठशाला जरूर चला रहे थे। लेकिन उनका शिक्षण बाधित हो रहा था क्योंकि वे कृष्ण के अलावा और किसी बात का निरूपण

नहीं कर सकते थे । उनके शिष्य कब तक हर दिन अपने अध्यापक के व्याकरण और अलंकार भूल कर कृष्ण पर ही उपदेश सुनते ? लोग भुनभुनाते और शिकायतें करते । लेकिन इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । विश्वम्भर कृष्ण के अलावा और किसी बात पर ध्यान ही नहीं लगा सकते थे । अंतत: पाठशाला को बंद करना पड़ा ।

कभी कभी जब उनका उत्साह सीमा पर पहुंच जाता था तो वे मूर्छा जैसी अवस्था — एक तरह की भाव-समाधि में पहुंच जाते थे । ऐसी दशाएं प्राय: होने लगीं और एक अरसे में, समाधि की अवस्था में पहुंच कर उनके धार्मिक जीवन का स्थायी अंग बन गयीं । अपने भक्ति आवेग को मूर्त-रूप देने में उन्हें ज्यादा समय नहीं लगा । उन्होंने संकीर्तनों का, उपास्य देव की सामूहिक गानों के जरिए स्तुति या आह्वान का आयोजन किया । ये संकीर्तन बहुत जनप्रिय हुए । दिन-पर-दिन उनमें भाग लेने वालों की संख्या बढ़ती ही गयी और शीघ्र ही उन्होंने नगर संकीर्तन का, सड़कों पर सामूहिक गान का रूप ले लिया । अपने नवधारित मत के प्रचार के लिए ये नगर संकीर्तन, गानातिरेक, जिनमें चैतन्य अपनी संपूर्ण भावुकता उंड़ेल देते थे, यह प्रभावशाली हुआ । कृष्ण के रूप में उनकी ईश्वर आराधना उनके सार्वलौकिक प्रेम के उपदेश में अभिव्यक्त हुई । यह ही चैतन्य का संदेश और उनका लक्ष्य था । चैतन्य द्वारा प्रतिपादित बंगाल के वैष्णव मत का सामाजिक तत्व था ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य की एकता का विचार तथा भक्ति का सेवा प्रेम और उपासना में प्रतिफलन जिसमें जाति के बंधनों का सारा महत्व समाप्त हो जाता था । चैतन्य की सार्वभौम, निस्वार्थ प्रेम की पुकार उनके मधुर, मोहक गीतों में अभिव्यक्त हुई जिनमें झुंड-के-झुंड लोग लालायित होकर सम्मिलित होते थे । चैतन्य द्वारा शुरू किए गये नाम संकीर्तन जनता में वैष्णव मत को लोकप्रिय बनाने में काफी हद तक काम आए ।

जैसा पहले कहा जा चुका है, धार्मिक भावातिरेक के शुरू के दिनों में नवद्वीप के अनेक लोग विश्वम्भर को पागल समझते थे । उनकी मां और नवविवाहित पत्नी उनमें आये परिवर्तन से बहुत चिंतित थीं । लेकिन नगर का वैष्णव समुदाय और समादरणीय अद्वैत आचार्य इस रूपांतरण के स्वरूप को समझते थे । ये वृद्ध धर्मपरायण विद्वान शीघ्र ही समझ गये कि विश्वम्भर का सनकी-सा लगने वाला आचरण धार्मिक आवेग की तीव्रता की अभिव्यक्ति पाने के अलावा और कुछ नहीं है ।

अद्वैत आचार्य इस युवा कृष्ण भक्त के उत्साही, अनुरागी हो गये । ऐसा ही जलधर पंडित के पुत्र श्रीवास ने भी किया । इस तरह वृद्ध अद्वैत आचार्य, श्रीवास, गदाधर, वक्रेश्वर पंडित, शुक्लांवर, गंगादास और अन्य की विश्वम्भर की पहली अनुयायी मंडली बनी । नवद्वीप के लगभग समग्र, अल्प-संख्यक किंतु धर्मपरायण वैष्णव समुदाय ने अद्वैत आचार्य के नेतृत्व में विश्वम्भर को अपना लिया ।

वैष्णव समुदाय स्वाभाविक तौर पर विश्वम्भर और उनके समकेस्तमी परिषदों की

ओर आकृष्ट हो रहा था, लेकिन इतर जनसंख्या में दोनों तरह की प्रतिक्रिया थी। रूढ़िवादी ब्राह्मण तब के धार्मिक भावनाओं को असंयमित गान विस्फोटों के रूप में अभिव्यक्त करने की इस रीति को स्पष्टत: नीची निगाह से देखते थे।

विश्वम्भर के नेतृत्व में चल रहा यह नया धार्मिक पंथ नगर के अधिक-से-अधिक सामान्य जनों को आकृष्ट करने लगा। श्रीवास के प्रांगण में भक्तों की निजी उपासनात्मक संकीर्तन सभाओं के बाद शीघ्र ही नवद्वीप की सड़कों पर सामूहिक कीर्तन मंडलियां निकलने लगीं।

धीरे धीरे उनके नेतृत्व में चल रहे इस नव वैष्णव पंथ ने शासन अधिकारियों का ध्यान भी आकृष्ट किया। इसे वे पसंद नहीं करते थे। आगे के घटना-क्रम को समझने के लिए हमें तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति पर दृष्टि डालनी पड़ेगी क्योंकि चैतन्य के पंथ के प्रचार से इसका प्रत्यक्ष संबंध था।

परकीय शासक और उसके स्वधर्मी अधिकारी जनता में इस धार्मिक जागृति के प्रति उदासीन थे। गौड (बंगाल का यही नाम उन दिनों प्रचलित था) का सुल्तान सैयद वंश का हुसेन शाह था। हुसेन शाह के राज्य में वैष्णव धर्म का उपदेश करने में चैतन्य और उनके सहयोगियों को अनेक किस्मों की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चैतन्य के संन्यास आश्रम में प्रवेश के बाद अपना जन्म-स्थान छोड़कर उड़ीसा के हिंदू राज्य में जाकर रहने का यही मुख्य कारण था।

तत्कालीन अभिलेखों से पता चलता है कि सुल्तान हुसेन शाह धर्मांध व्यक्ति था पर उसमें सिकंदर लोदी, फीरोज़शाह तुग़लक या औरंगज़ेब जैसी धार्मिक कट्टरता नहीं थी।

जहानाबाद अभिलेखों में हुसेन शाह को — 'जिसके राज्य में इस्लाम फल-फूल रहा है', कहकर संबोधित किया गया है। किसी अन्य सुल्तान की अपेक्षा उसके शासनकाल में बंगाल में सर्वाधिक मस्जिदों का निर्माण हुआ। हुसेन शाह के शासनकाल में बंगाल की प्रजा की दशा का वर्णन करते हुए उस समय आये पुर्तगाली यात्री बरबोसा ने लिखा है — "बंगाल के राजा के अधीन बहुत बड़े इलाके में 'हीदेन' (अर्थात मूर्ति पूजक हिंदू) रहते थे। उनमें से अनेक लोग राजा और हुक्मरानों का संरक्षण पाने के लिए रोज मुसलमान बन रहे थे।"

गया से लौटने के तुरंत बाद निमाई बिलकुल परिवर्तित मनुष्य बन गये। तब से उनका समर्पित जीवन और व्यक्तित्व कृष्ण भक्ति का प्रेरित और प्रेरणादायक उदाहरण बन गया। इसके बाद अद्वैत आचार्य के नेतृत्व वाली वैष्णव मंडली के अलावा अन्य भक्तगण भी निमाई की दीक्षा होने के पहले ही उनके पास आने लगे। इनमें प्रमुख थे नित्यानंद जिन्होंने बंगाल में वैष्णव आंदोलन की वृद्धि और विकास में अग्रणी भूमिका अदा की।

नित्यानंद चैतन्य से कोई आठ साल बड़े थे और बंगाल के पश्चिमी भाग में स्थित बीरभूम जिले के एकचक्र नामक गांव के रहने वाले थे। ऐसा विश्वास किया जाता था कि नित्यानंद अपने पूर्व जीवन में अवधूत संन्यासी थे और संभवत: वे किसी तांत्रिक संप्रदाय के थे। कम आयु में ही उन्होंने घर छोड़ दिया और परिव्राजक साधु बन गये। वे परिव्राजक बनकर उत्तर और दक्षिण भारत में दूर दूर तक अनेक वर्षों तक भ्रमण करते रहे।

वे अपने यात्रा-क्रम में जब नवद्वीप आये तब उन्हें निमाई के धार्मिक जीवन के बारे में पता चला। इसके बाद नित्यानंद उनसे नवद्वीप में मिले। नित्यानंद चेहरे-मोहरे से निमाई के संन्यासी हो चुके बड़े भाई विश्वरूप जैसे लगते थे। यहां तक कि निमाई की मां ने अपने खो चुके पुत्र के रूप में उनका स्वागत किया।

कृष्णानंद कविराज के अनुसार चैतन्य नित्यानंद को 'बोड़ो दादा' (बड़े भाई) कहा करते थे। चैतन्य से उनकी भेंट को ऐतिहासिक माना जा सकता है। दोनों के बीच संपर्क गौडीय वैष्णव संप्रदाय के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। कोई एक साल बाद जब चैतन्य नवद्वीप को छोड़कर वहां से सदा के लिए चले गये तब बंगाल में आंदोलन को चलाने का दायित्व मुख्यतया नित्यानंद के कंधों पर आ पड़ा।

लगभग हर साल नित्यानंद चैतन्य के अन्य बंगाली अनुयायिओं के साथ वर्षा ऋतु में चैतन्य से मिलने जाया करते थे। कहा जाता है कि वहीं वे बंगाल में वैष्णव आंदोलन के संबंध में उनसे विचार-विमर्श करते और उनकी राय लेते थे। नित्यानंद और चैतन्य का यह संबंध उनके जीवन-पर्यंत बना रहा। नवद्वीप में हुई प्रथम भेंट में ही दोनों परस्पर आकृष्ट हुए और उन्हें लगा कि उनका जीवन लक्ष्य एक ही है। इन सारी गतिविधियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि नित्यानंद का चैतन्य से परिचय ईश्वर-इच्छित था।

नवद्वीप में चैतन्य से प्रथम बार भेंट के बाद नित्यानंद चैतन्य के मुख्य साथी और उनके प्रबल प्रशंसक हो गये। चैतन्य के बंगाल से चले जाने के बाद बंगाल में वैष्णव आंदोलन के सामाजिक विचारों को प्रचलन में लाने का कार्य नित्यानंद ने किया। बाद में उनके पुत्र वीरभद्र ने अछूतों को भी वैष्णव मत के उदार दायरे में स्वीकार कर हिंदू समाज में सुधार की प्रक्रिया जारी रखी। चैतन्य के अनुयायी के रूप में नित्यानंद ने सहनशीलता और औदार्य के नये वैष्णव मत से संबंधित सामाजिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अद्वैत आचार्य बहुत वृद्ध हो गये थे इसलिए चैतन्य जब नवद्वीप छोड़कर चले गये तब नित्यानंद ने ही बंगाली वैष्णवों का नेतृत्व सम्हाला।

चैतन्य ने नित्यानंद को विवाह करके बंगाल में बसने और धर्म-कार्य करने के लिए कहा था लेकिन यह बात तब की है जब चैतन्य स्थायी रूप से पुरी में रहने लग गये थे। लेकिन इसके पहले नवद्वीप में चैतन्य के अंतिम दिनों का विवरण शेष है, विशेषकर उनकी दीक्षा और तद्परवर्ती वैराग्य का विवरण।

संन्यास दीक्षा

उनके गया से नवद्वीप आने और संन्यास दीक्षा के बीच अवधि बहुत कम थी, कोई एक वर्ष की। कवि कर्णपुर-कृत संस्कृत महाकाव्य में इस अवधि का काल-क्रम स्पष्टतः निम्नलिखित रूप में उल्लिखित है :

"निमाई गया से पौष मास में लौटे। अगले महीने अर्थात माघ से उनका उन्माद शुरू हुआ। इसके चार महीने बाद अगले वर्ष वैशाख से उनकी संस्कृत पाठशाला बंद करनी पड़ी। उन्होंने अगले आठ महीने अर्थात ज्येष्ठ से पौष तक संकीर्तन में बिताए। अगले महीने माघ में उन्होंने संन्यास लिया।" चैतन्य के दो अग्रणी जीवनी लेखकों — वृंदावनदास (**चैतन्य भागवत** के रचयिता) और कृष्णदास कविराज (**चैतन्य चरितामृत** के रचयिता) ने इस अवधि को एक वर्ष की बतलाया है।

निमाई पूर्णतः ईश्वरोन्मत्त हो गये। कृष्ण के अलावा उनके लिए कोई और विषय नहीं रह गया था। वे सारे लौकिक आकर्षणों से विरक्त हो गये। अध्यापन करना असंभव हो जाने के कारण उन्होंने अपनी पाठशाला बंद कर दी। श्रीनिवास के प्रांगण में मृदंग और मंजीरा के साथ सामूहिक भक्तिपरक कीर्तन गायन की तन्मयता में उनकी रातें बीततीं। उनके धर्मोपदेश में कोई जाति-भेद नहीं था। इसलिए लोग चैतन्य के कीर्तन-दल में बड़ी संख्या में आने लगे।

उनके कृष्ण-प्रेम के उपदेश और सामान्य प्रेम तथा करुणा के आदर्श ने साधारण जनता की कल्पना को आकृष्ट किया। उनकी सामूहिक कीर्तन मंडली नवद्वीप के जीवन का नियमित अंग बन गई। क्योंकि अब वे श्रीनिवास के घर में होने वाली निजी पूजा नहीं रह गयी थीं। शीघ्र ही खुली सड़कों पर नगर-संकीर्तन के रूप में उनका आयोजन होने लगा और कृष्ण-प्रेम की उपासना का संदेश नगर के घर घर में पहुंचने लगा। चैतन्य का ज्वलंत धर्म और उनकी सर्व-समावेशी भक्ति उपासना, भाव-विह्वल **नाम कीर्तन** गायन के माध्यम से जनता में प्रसारित होने लगी। नित्यानंद चरम धार्मिक विह्वलता के इन दिनों में उनके स्थायी साथी रहे।

यह आध्यात्मिक उभार विधर्मी शासक या क़ानून व्यवस्था की देखभाल करने वाले स्थानीय प्रतिनिधि अर्थात काज़ी के बिलकुल मनोनुकूल नहीं लगा। इस नए और लोकप्रिय धार्मिक आंदोलन के प्रति उनकी उपेक्षा भाव के अनेक उदाहरण विदित हुए। काज़ी ने चैतन्य के निर्देश पर प्रायः आयोजित होने वाले नगर-संकीर्तनों को रोकना चाहा तो एक नाटकीय घटना घटी।

नवद्वीप के काज़ी ने नगर की सड़कों पर कीर्तन-गायन पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके उत्तर में चैतन्य ने स्वयं इस आदेश का उल्लंघन करने के लिए सड़कों पर कीर्तन वृंद ले जाने का निश्चय किया। उस रात के प्रदर्शन के लिए उन्होंने सबको इस कीर्तन

वृंद में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया । यह नवद्वीप के लिए स्मरणीय अवसर था । चैतन्य के आकर्षक धार्मिक व्यक्तित्व से खिंचकर सैकड़ों लोग उनके कीर्तन वृंद में सम्मिलित हुए । काज़ी के प्रतिबंध आदेश की उपेक्षा करके उनके वृंद के साथ सड़कों पर जाने से हलचल मच गयी । वृंद जैसे जैसे आगे बढ़ता उसमें बड़ी संख्या में और लोग सम्मिलित होते । यह सिद्ध करने के लिए कि चैतन्य के विरोधियों की संख्या कितनी नगण्य है, अगणित लोग सड़कों पर आ गये । चैतन्य के इस विशाल कीर्तन वृंद के मशालों के साथ परडांगा, गरीगाछा आदि क्षेत्रों में घूमने का विवरण स्थान, नामों के साथ **चैतन्य चरितामृत** में वर्णित है । कई सड़कों से गुजर कर यह वृंद काज़ी के निवास-स्थान पर पहुंचा । काज़ी को यह आशा नहीं थी कि चैतन्य इतने अनुयायी जुटा सकेंगे इसलिए उसे प्रतिबंध आदेश का उल्लंघन करने वाले हर व्यक्ति को दंडित करने का विचार छोड़ देना पड़ा । उसने चैतन्य का समुचित आदर किया और मामला वहीं रफ़ा-दफ़ा हो गया ।

जैसा पहले कहा जा चुका है चैतन्य को अपने समाज के भी रूढ़िवादी तबकों के विरोध का सामना करना पड़ा । वे लोग चैतन्य की कृष्ण-भक्ति शिक्षा को 'संगीतात्मक प्रेम' कहकर उसका उपहास किया करते थे । लेकिन चैतन्य अविचलित रहे । उनके मन में विरोधियों के प्रति कोई दुर्भाव या वैर-भाव नहीं आया । वे प्रेम और सहनशीलता के जीवंत रूप बने रहे । यहां तक कि उनके लिए भी जो उनसे या उनके अनुयायियों से खुली शत्रुता का व्यवहार कर रहे थे । चैतन्य के चरित्र की इस विशेषता विशेषकर उपदेश और आचरण की एकता धीरे धीरे उनके आलोचकों और विरोधियों को भी प्रभावित करने लगी ।

उनके पूर्ण ईमानदार और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के आकर्षण का दुष्टों पर भी सत्प्रभाव पड़ा । जगाई और मधाई की कथा इसका उदाहरण है । ये दोनों नवद्वीप में अपनी दुष्टता और अन्य के प्रति क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे । एक दिन नशे की अवस्था में इन्होंने चैतन्य और नित्यानंद पर आक्रमण कर दिया । शराब की बोतल के एक टुकड़े की चोट से नित्यानंद के सिर पर चोट लगी और खून बहने लगा लेकिन चैतन्य और नित्यानंद ने अपने शरीर पर इस आघात के बावजूद आक्रमणकारियों के प्रति प्रेम और दया-भाव प्रदर्शित किया जिसके फलस्वरूप वे पूर्णत: उनके मतावलंबी बन गये । इसके बाद जगाई और मधाई विनम्रता और विनय के उदाहरण बन गये और भक्ति-मार्ग की ओर मुड़ गये ।

चैतन्य और नित्यानंद के अनुरागी प्रभाव से उनके स्वभाव-परिवर्तन की कथा दूर दूर तक फैल गई । चैतन्य पंथ ने बंगाल के भक्ति आंदोलन के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू किया ।

पहले उल्लेख हो चुका है कि नवद्वीप रूढ़िवादी और अभिमानी विद्वानों के नेतृत्व

में समाज का एक प्रभावशाली तबका चैतन्य द्वारा प्रतिपादित नये वैष्णव मत का विरोधी बना रहा। उन्होंने अपने बौद्धिक अहंकारवश न केवल भावनापरक कृष्ण-भक्त की भर्त्सना और उपहास किया बल्कि इसके प्रसार में बाधा भी पहुंचाने की कोशिश की। लेकिन चैतन्य उनका हृदय परिवर्तन करना चाहते थे और उन्हें सार्वभौम प्रेम तथा सहिष्णुता के अपने मत में लाना चाहते थे।

लेकिन साथ-ही-साथ उनके मन में यह अनिवार्य प्रेरणा काम कर रही थी कि उन्हें सब कुछ परित्याग कर पूर्णत: संन्यासी का जीवन व्यतीत करना चाहिए। संन्यास ग्रहण करने का एक और महत्वपूर्ण कारण था — **चैतन्य चरितामृत** के अनुसार उन्होंने सांसारिक जीवन से सारे संबंध तोड़कर अपने मत को न मानने वालों को विजित करने के लिए संन्यास दीक्षा लेने का निश्चय किया। इस विवरण के अनुसार उन्होंने कहा — "मुझे इन मनुष्यों के त्राण के लिए संन्यास जीवन ग्रहण करना है। मुझे संन्यासी रूप में देखकर वे मुझे नमस्कार करेंगे और नमस्कार करने से उनके पाप नष्ट हो जायेंगे और उनके हृदय में भक्ति का उदय होगा....।"

चैतन्य की संन्यास दीक्षा भी स्मरणीय घटना थी। भरी जवानी में संन्यासी जीवन अंगीकार करने के प्रति उस इलाके में जो प्रतिक्रियाएं हुईं उससे प्रकट हुआ कि वे उस क्षेत्र में कितने प्रिय और समादृत हैं।

चैतन्य के संन्यास स्वीकार करने के अवसर पर नवद्वीप में शोक का दृश्य उपस्थित हो गया। बाजार की दुकानों में कोई कारोबार नहीं हुआ। अनेक रोने लगे और कहा जाता है कि रूढ़िवादी तक चैतन्य का विरोध करने के लिए पश्चात्ताप करते रहे। वे बातचीत का एकमात्र विषय बन गये। ऐसी नवयुवावस्था में निमाई की संन्यास दीक्षा के प्रति सैकड़ों लोकगीतों में दुख प्रकट किया गया। ये लोकगीत आज तक गाए जाते हैं।

अपने इकलौते बेटे के संन्यास लेने पर वृद्ध मां के दुख की कल्पना की जा सकती है। **चैतन्य भागवत** के अनुसार निमाई के संन्यास जीवन अपनाने पर शचीदेवी बारह दिनों तक उपवास करती रहीं। उनका दुख और भी हृदय-विदारक था क्योंकि उनके मन में जो भी दुख रहा हो पुत्र के संन्यासी बनने का अनुरोध करने पर उन्हें इसके लिए स्वीकृति भी देनी पड़ी। इस संबंध में वे पुत्र के सचमुच योग्य सिद्ध हुईं।

उनकी नवयुवती पत्नी विष्णुप्रिया को भी समान श्रेय मिलना चाहिए। उन्होंने तब से जो तपश्चर्या का जीवन शुरू किया उसका वर्णन **अद्वैत प्रकाश** में किया गया है। वे बहुत दीर्घायु रहीं और अपने पति की मृत्यु के बाद पचास वर्षों तक जीवित रहीं क्योंकि ऐसा बताया जाता है कि वे खेतड़ी (उत्तर बंगाल) में हुए प्रसिद्ध वैष्णव उत्सव में उपस्थित थीं जिसमें नरोत्तम ठाकुर ने शास्त्रीय पदावली कीर्तन का समारंभ किया था। अपने संपूर्ण दीर्घकालीन जीवन में विष्णुप्रिया ने चैतन्य की पत्नी के योग्य भक्ति

और संयम प्रदर्शित किया।

दीक्षा के समय निमाई की आयु अभी 23 वर्ष की ही हुई थी। दीक्षा जनवरी, सन 1510 (माघ, शक 1431) नवद्वीप से कुछ ही दूर गंगा के दूसरे तट पर कटवा नामक स्थान में हुई।

उस समय कटवा में प्रसिद्ध बंगाल संन्यासी केशव भारती रहते थे। वे निमाई के संन्यास गुरु बने। केशव भारती शंकर संप्रदाय के भारती नाम के थे।

लेकिन दीक्षा के पूर्व या बाद में निमाई के भक्ति संप्रदाय का केशव भारती की धार्मिक विचारधारा से कोई सरोकार नहीं था। संभवत: निमाई ने केशव भारती से इसलिए दीक्षा ली कि वे वहां रहने वाले प्रसिद्ध संन्यासी थे और संन्यास संस्कार की औपचारिकताओं को पूरा करा सकते थे।

निमाई संन्यासी हो गये और उन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य नाम धारण किया। इसके बाद उन्हें उनके इस नाम के संक्षिप्त संस्करण चैतन्य के रूप में जाना जाने लगा।

उनकी संन्यास दीक्षा के समय उनके तीन घनिष्ठ अनुयायी नित्यानंद, चंद्रशेखर और मुकुंददत्त उपस्थित थे। चैतन्य ने लौकिक आकर्षण के सारे चिह्नों का परित्याग कर दिया। कहा जाता है जब उनके सुंदर चमकदार केश सिर से उतारे गये तो कटवा के अनेक लोगों की आंखों में आंसू आ गये। इसके बाद निमाई संन्यासी हो गये। उनका संन्यास जीवन शुरू हो गया।

संन्यास और उसके उपरांत

संन्यासी चैतन्य कटवा से नवद्वीप वापस नहीं आये। उन्होंने बंगाल छोड़ने का निश्चय कर लिया। इससे उनके शिष्य और अनुयायी स्तब्ध रह गये। लेकिन उन्हें बंगाल में नवद्वीप या किसी अन्य स्थान में रहने के लिए सहमत नहीं किया जा सका।

चैतन्य कटवा से कुछ समय के लिए वृद्ध वैष्णव अद्वैत आचार्य के घर शांतिपुर गये। कहा जाता है कि मूलत: उनकी योजना 'गोप' — भगवान कृष्ण की शैशवावस्था के लीला स्थान वृंदावन जाने की थी। चैतन्य राधा की तरह अनन्य भक्ति से भगवान कृष्ण की पूजा और ध्यान किया करते थे। लेकिन उन्हें अपने निवास-स्थान में परिवर्तन करना पड़ा और अपनी मां के अनुरोध पर उड़ीसा में जगन्नाथधाम पुरी को चुनना पड़ा। उनकी मां शांतिपुर में ही उनसे हमेशा के लिए अलग हो गयीं।

संन्यास ग्रहण करने के बाद यह व्यवस्था की गयी कि चैतन्य अपनी मां और अपने अनुयायियों से विदा लेने के लिए एक बार अद्वैत आचार्य के घर शांतिपुर आयें। उसी विदाई समारोह में शचीदेवी ने चैतन्य को सुदूर वृंदावन की बजाय स्थायी तौर पर पुरी में ही रहने के लिए कहा। पुरी बंगाल के अधिक निकट था और यहां से अनेक लोग वहां तीर्थ-यात्रा पर जाया करते थे। वहां नवद्वीप के उनके अनुयायी और अन्य लोग

उनसे जाकर मिल सकते थे जिनसे उनकी मां को भी उनके समाचार मिल जाते । वहां तीर्थ-यात्री भी प्राय: जाया करते थे और उनसे भी उनके समाचार कभी मिलते ।

चैतन्य ने अपनी मां के अनुरोध के सामने झुककर उनका सम्मान किया । वहां एकत्रित वैष्णवों के सामने उन्होंने मां को वचन दिया कि वे पुरी में ही रहेंगे । श्रीकृष्ण की स्मृति से गरिमामंडित वृंदावन के पवित्र स्थानों के पुनरुद्धार की अपनी हार्दिक इच्छा को पूरा करने के लिए वृंदावन में ही उनकी रहने की बहुत इच्छा थी लेकिन उन्होंने स्वयं यह कार्य निष्पन्न करने का विचार छोड़ दिया और अपने कुछ शिष्यों को यह कार्य सौंप दिया । संन्यास लेने के महीने भर के भीतर चैतन्य पुरी रवाना हो गये । जाने के पूर्व उन्होंने अपनी मां, पत्नी और शिष्यों को सम्माननीय अद्वैत आचार्य और अन्य अनुयायियों को सौंप दिया ।

नित्यानंद, दामोदर पंडित, मुकुंददत्त और जगदानंद उड़ीसा यात्रा पर उनके साथ गये ।

यह सन 1510 के प्रारंभ की बात है । उस समय बंगाल के सुल्तान हुसेन शाह और उड़ीसा के राजा के बीच युद्ध चल रहा था । चैतन्य और उनके चारों सहयोगी नाव से उड़ीसा जाने वाले थे । उस समय दक्षिण बंगाल में कलकत्ता से 25 मील दूर स्थित छत्रभोग (गंगा और बंगाल की खाड़ी के संगम पर वर्तमान डायमंड हारबर के निकट) बंगाल का अंतिम स्थान था । उसके बाद उड़ीसा की सीमा शुरू हो जाती थी ।

सुल्तान की ओर से बंगाल की उस सीमा की देखभाल एक तुर्क अफगान किया करता था जो आने-जाने वालों को बहुत परेशान किया करता था । कवि कर्णपुर के नाटक **चैतन्य चंद्रोदय** जैसे स्रोतों के अनुसार अनेक लोगों ने चैतन्य से छत्रभोग पहुंचने के पूर्व कुछ प्रतीक्षा कर लेने के लिए कहा ।

लेकिन चैतन्य सुरक्षित छत्रभोग के पास सीमा पार कर गये और उड़ीसा के क्षेत्र में पहुंच गये । सीमा पार करते समय सीमा रक्षक रामचंद्र खां ने उनकी सहायता की । उसके बाद अपने चारों सहयोगियों सहित चैतन्य समुद्री मार्ग से पुरी के लिए रवाना हो गये ।

उड़ीसा और दक्षिण तथा पश्चिम भारत की प्रथम यात्रा

चैतन्य के चारों सहयोगी नित्यानंद, दामोदर पंडित, मुकुंददत्त और जगदानंद उन्हें पुरी पहुंचाकर वापस लौट आए । तब से अर्थात सन 1513 से चैतन्य और उनके बंगाल के अनुयायियों के बीच निकट संबंध प्रति वर्ष पुरी यात्रा के द्वारा बना रहा ।

लगभग प्रति वर्ष उनके बंगाली शिष्य और अनुयायी वहां जाते और जगन्नाथ के रथ-यात्रा उत्सव के समय गुरु से भेंट करते । लेकिन सन 1515 में चैतन्य भक्तों की यह वार्षिक तीर्थ-यात्रा नहीं हो सकी क्योंकि बंगाल के सुल्तान हुसेन शाह ने पुन: उड़ीसा

के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था ।

चैतन्य पहली बार पुरी में कम समय के लिए ठहरे । कवि कर्णपुर ने अपने महाकाव्य में लिखा है कि गुरु पुरी में केवल अठारह दिन रुके और वहां से दक्षिण भारत की तीर्थ-यात्रा पर चले गये । लेकिन दूसरे स्रोतों के अनुसार वे पुरी में दो महीने रुके थे और अप्रैल, सन 1510 में तीर्थ-यात्रा के लिए निकले ।

उनकी दक्षिण और पश्चिम भारत की तीर्थ-यात्रा काफी लंबी और विस्तृत रही । इसमें लगभग दो वर्ष लग गये । लेकिन् पुरी में उनके संक्षिप्त प्रवास-काल में दो महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं । इनसे न केवल चैतन्य के आकर्षक आध्यात्मिक व्यक्तित्व का पता चला, उड़ीसा में वैष्णव पंथ और आंदोलन को लोकप्रिय बनाने में भी ये काफी सहायक हुई । इन दो घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह बहुत ही दृढ़ पुरुष भी चैतन्य के प्रभाव के मोहक आकर्षण में पड़े बिना नहीं रह सकते थे ।

पहली घटना थी विख्यात वेदांती विद्वान वासुदेव सार्वभौम का नाटकीय मत परिवर्तन । वे मूलतः नवद्वीप के वासी थे और उनकी विद्वत्ता की दूर दूर तक प्रसिद्धि थी । उनका पूरा नाम वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य था और वे चैतन्य से आयु में 40 वर्ष बड़े थे ।

बंगाल में वासुदेव की विद्वत्ता कथा बन गयी थी । कम वय में ही उनकी असाधारण मेधा और स्मृति प्रकट हुई । वे नव्य न्याय के अध्ययन के लिए नवद्वीप से मिथिला गये । उस समय नव्य न्याय के लिए मिथिला की बहुत प्रसिद्धि थी । वे मिथिला में पुराने विद्वान पक्षधर मिश्र द्वारा स्थापित पाठशाला में अध्ययन के लिए गये ।

नव्य न्याय की शिक्षा मिथिला के लोगों में ही सीमित रहे इस उद्देश्य से किसी बाहर के व्यक्ति को न्याय की विशेष पुस्तकों की प्रतिलिपि नहीं करने दी जाती थी इसलिए कहा जाता है कि वासुदेव ने समग्र **तत्व चिंतामणि** और **कुसुमांजलि** के छंदोबद्ध भाग को कंठाग्र कर लिया और मिथिला में विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति पर बंगाल वापस आ गये ।

इस प्रकार ये शास्त्र-विद्यार्थियों को उपलब्ध हुए । यह कार्य वासुदेव की प्रतिभा से ही संभव हुआ । उनके विद्वान शिष्य बांगला न्याय के विख्यात प्रतिपादक रघुनाथ शिरोमणि थे । **चैतन्य मंगल** के लेखक जयानंद के अनुसार वासुदेव सार्वभौम नवद्वीप में अत्याचार से त्रस्त होकर बाद में पुरी जाकर रहने लगे ।

चैतन्य की प्रथम पुरी यात्रा (सन 1510 के आरंभ) के समय वासुदेव सार्वभौम वहां उड़ीसा के राजा के संरक्षण में सम्मानित वृद्ध विद्वान के रूप में वास कर रहे थे । वृंदावनदास ने चैतन्य से उनकी पहली भेंट का इस प्रकार वर्णन किया है — मंदिर में जगन्नाथ की प्रतिमा देखते ही चैतन्य भावावेश में उसका आलिंगन करने को उद्यत हुए और बेसुध होकर गिर पड़े । पुजारियों ने उनसे दुर्व्यवहार किया । पुजारी उन्हें जानते

नहीं थे और उन्हें कोई पागल समझ बैठे थे । यह दृश्य देखकर सार्वभौम चैतन्य को अपने घर ले आए। वहां उन्हें पता चला कि वह संन्यासी उनके पिता के मित्र नीलांबर चक्रवर्ती का पौत्र है ।

इसके बाद चैतन्य में वे काफी रुचि लेने लगे । कहा जाता है कि वासुदेव ने पहले उनको त्याग के दुर्गम पथ से विरत करने की चेष्टा की और उन्हें वेदांत की राह पर ले आना चाहा । उनके बीच कई दिनों तक विद्वत्तापूर्ण विवाद चलता रहा और चैतन्य ने अपने द्वैतवादी वैष्णव उपासना सिद्धांत का पक्ष रखा । कई दिनों तक खुलकर धार्मिक संवाद चलने के बाद वासुदेव ने चैतन्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति आधारित वैष्णव पंथ को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार चैतन्य को विजित करने की बजाय वासुदेव स्वयं भावनापरक भक्ति मार्ग के पक्षधर हो गये ।

सार्वभौम जैसे सम्मानित विद्वान के मतांतरण से साधारण-जन और सुसंस्कृत लोगों, दोनों की ही दृष्टि में चैतन्य के धार्मिक व्यक्तित्व की शक्ति बहुत बढ़ गई । इसको पुरी में युवक संन्यासी की उल्लेखनीय उपलब्धि माना गया । यह समाचार नवद्वीप भी पहुंचा जहां उनके अनुयायी अपने संप्रदाय की इस महत्वपूर्ण विजय की सूचना पाकर अवश्य ही प्रेरित हुए होंगे ।

एक वृद्ध नैयायिक और दार्शनिक के वैष्णव भक्त बन जाने की उल्लेखनीय उपलब्धि के साथ ही संन्यासी चैतन्य की भाव-विह्वल भक्ति से पुरी में अनेक लोग उनकी ओर आकृष्ट हुए। स्वयं उड़ीसा के राजा गजपति प्रताप रुद्र वासुदेव सार्वभौम का बहुत सम्मान करते थे । उन्होंने भी बंगाल के इस युवक संन्यासी की आध्यात्मिक शक्ति को महसूस और मान्य किया ।

इसके परिणामस्वरूप चैतन्य को राजा प्रताप रुद्र से सच्चा अभिवादन मिला । चैतन्य के प्रथम पुरी प्रवास की ही यह दूसरी बड़ी घटना थी । प्रताप रुद्र चैतन्य प्रतिपादित वैष्णव पंथ के अनुयायी हो गये । इसे प्रमाणित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है किंतु प्रताप रुद्र सदा के लिए उनके विश्वासी प्रशंसक बने रहे । जब भी वे चैतन्य से मिलने आये उन्होंने हर बार चैतन्य को उचित सम्मान दिया । अनेक समकालीन विवरणों में उनके चैतन्य के प्रति समर्पित होने की बाद स्वीकार की गयी है ।

सार्वभौम के मतांतरण और उड़ीसा के राजा द्वारा अभिनंदन, इन दो उपलब्धियों से उड़ीसा में वैष्णव पथ के उत्तरकालीन विकास की आधार-भूमि तैयार हुई । चैतन्य के निधन के उपरांत उड़ीसा में वैष्णव मत और आंदोलन की वृद्धि और प्रसार श्यामानंददास और दूसरों की धार्मिक गतिविधियों और व्यक्तित्व के कारण हुआ । चैतन्य के समय में उड़ीसा में गौडीय वैष्णव मत का प्रवेश स्वयं चैतन्य के व्यक्तिगत प्रभाव और उदाहरण के फलस्वरूप हुआ ।

चैतन्य अप्रैल, सन 1510 तक दक्षिण भारत और फिर बाद में पश्चिम भारत की

यात्रा पर रवाना हो गये । यह तीर्थ-यात्रा दीर्घकाल तक चली और काफी दूर दूर तक की यात्रा रही । चैतन्य अपनी निजी तीव्र आध्यात्मिक प्रेरणा से निर्दिष्ट होकर एक के बाद एक धार्मिक महत्व के स्थान पर जाते रहे ।

यह तीर्थ-यात्रा लगभग दो वर्ष तक चली । इस बार चैतन्य ने अपने साथ किसी अनुयायी, मंडली या सहयोगियों को नहीं रखा था । सारी यात्रा में केवल एक व्यक्तिगत परिचित उनके साथ रहा । उसका नाम था गोविंद कर्मकार । कुछ विद्वानों के अनुसार उसने इन दो वर्षों की चैतन्य की तीर्थ-यात्रा का एक विस्तृत विवरण लिखा था ।

इस धार्मिक यात्रा-क्रम में चैतन्य अगणित मंदिरों, गांवों और आध्यात्मिक केंद्रों में गये । वे दक्षिण भारत और पश्चिम भारत में जहां भी गये उनके तीव्र भक्तिपरक आकर्षण से भारी संख्या में लोग उनकी ओर आकृष्ट हुए । उनकी यात्रा के परिणामस्वरूप और उनके जीवंत मत के चुंबकीय आकर्षण के कारण इन धार्मिक स्थानों और केंद्रों में उपासना की अपेक्षाकृत अधिक भावनात्मक रीति उत्प्रेरित हुई । दक्षिण भारत और महाराष्ट्र, गुजरात आदि में उनका यह सामान्य प्रभाव पड़ा ।

उनकी तीर्थ-यात्रा का विस्तार से वर्णन संभव नहीं है । किंतु कुछ रोचक घटनाएं यहां दी जा सकती हैं । पहली घटना प्रसिद्ध वैष्णव भक्त और विद्वान रामानंद राया से उनकी भेंट है । चैतन्य से उनकी भेंट पवित्र नदी गोदावरी के तट पर राज महेंद्री के निकट हुई । रामानंद राघवेंद्रपुरी के शिष्य थे और राघवेंद्रपुरी स्मृति शेष विख्यात माधवेंद्रपुरी के शिष्य थे । रामानंद उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र के उच्च अधिकारी भी थे ।

चैतन्य ने पुरी में ही वासुदेव सार्वभौम से रामानंद राया की चर्चा सुनी थी । चैतन्य और रामानंद की गोदावरी के स्नान घाट पर प्रथम भेंट सचमुच ही मनोरम अवसर था । समान भक्तिपरक झुकाव होने के कारण दोनों ही एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए । रामानंद ने चैतन्य के भाव विह्वल धार्मिक उत्ताप का अनुभव किया और उनके प्रबल अनुयायी बन गये ।

चैतन्य भक्त राया का संग पाकर बहुत प्रसन्न हुए और कई दिनों तक उनके घर रहे । बंगाल के वैष्णव पंथ के इतिहास में प्रसिद्ध विद्वान और उच्चाधिकारी रामानंद राया द्वारा चैतन्य का अभिनंदन भी महत्वपूर्ण घटना थी । चैतन्य के लगभग सभी जीवनचरितों में यह तथ्य वर्णित है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि चैतन्य की रामानंद से भेंट यात्रा के प्रारंभ में ही हुई क्योंकि इस भेंट के बाद युवा तीर्थ-यात्री दक्षिण में और आगे गया । इस विस्तृत यात्रा-क्रम में चैतन्य अपनी उदार आध्यात्मिक दृष्टि के कारण जहां भी गये उन्होंने वहां के देवताओं और धार्मिक नेताओं के प्रति आदर-भाव प्रकट किया । विविध धार्मिक केंद्रों और स्थानों में जाने में उनकी उदार धार्मिक प्रवृत्ति प्रकट होती है ।

वे वैष्णव अनुयायियों के साथ कावेरी नदी के तट पर श्रीरंगम में कई महीनों तक

रहे । विख्यात माध्वाचार्य के निवास-स्थान उडीपी (दक्षिण कनारा) में भी उन्होंने कई दिन बिताए । यहां पर चैतन्य ने स्वयं माध्व द्वारा स्थापित कृष्ण मूर्ति की पूजा की और माध्व के अनुयायियों के साथ वैष्णव मत के संबंध में संवाद किया । वे मराठा देश में मराठी वैष्णव मत के प्रसिद्ध केंद्र माने जाने वाले स्थान पंढरपुर भी गये । पश्चिम भारत में वे सोमनाथ, द्वारका और प्रभासपाटन आदि प्रसिद्ध तीर्थों तक गये ।

लौटती बार वे मध्य भारत और आंध्र प्रदेश (रामानंद राया के स्थान से पुन: होकर) होते हुए वापस आए । वे पुरी दो वर्ष बाद सन 1511 के अंत तक लौटे थे ।

पुरी में दूसरा प्रवास और उत्तर भारत की यात्रा

इस बार चैतन्य दो वर्ष तक उड़ीसा में रहे । पहली तीर्थ-यात्रा समाप्त कर उनके पुरी लौटने के तुरंत बाद ही उनके बंगाल के शिष्य अद्वैत आचार्य और नित्यानंद के नेतृत्व में उनसे मिलने आए । दो वर्ष के बाद उनकी अपने गुरु से यह पहली भेंट थी ।

बंगाल के दो सौ चैतन्य शिष्यों और अनुयायियों ने चैतन्य का अभिनंदन किया । यह अपूर्व अवसर था । उस वर्ष जगन्नाथ के प्रसिद्ध रथ-यात्रा उत्सव में एक अपूर्व दृश्य देखने में आया । सारे भारत से पुरी में एकत्रित तीर्थ-यात्रियों ने देखा कि जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों की स्थापना के साथ साथ एक विशाल कीर्तन-यात्रा भी चल रही है ।

इस सामूहिक कीर्तन-यात्रा का नेतृत्व स्वयं चैतन्य कर रहे थे । उनके साथ बंगाल से आये दो सौ शिष्य थे । यह कीर्तन-यात्रा तीनों रथों को घेरे हुए पुरी की सड़कों पर चलती रही । चैतन्य उस वर्ष से लेकर जब तक पुरी में रहे प्रति वर्ष रथ-यात्रा के समय आयोजित कीर्तन-यात्रा में सम्मिलित होते रहे । बंगाल से उनके अनुयायी जगन्नाथ और चैतन्य का एक साथ अभिनंदन करने प्रति वर्ष तीर्थ-यात्रा पर पुरी आते थे ।

बंगाल के वैष्णवों का चैतन्य के जीवन-काल के बीस वर्षों तक प्रति वर्ष पुरी आगमन गुरु और उनके बंगाल के अनुयायियों के बीच कड़ी था । पुरी यात्रा के समय वे वहां काफी समय तक ठहरते और अपने गुरु का आशीर्वाद और साथ ही उनसे संदेश प्राप्त करते थे ।

चैतन्य के दक्षिण यात्रा से लौटने के तुरंत बाद पुरी में प्रथम मिलन के समय अद्वैत आचार्य और नित्यानंद से बंगाल में मत और विचारधारा के प्रचार के लिए विशेष रूप से राय ली गई ।

यह विशेष वैष्णव आंदोलन राधा-कृष्ण उपासना उन्मुख था । भारत के अन्य भागों के वैष्णव पंथों की तुलना में गौडीय वैष्णव मत की यही विशेषता थी । एतद उपरांत चैतन्य के प्रधान अनुयायी नित्यानंद ने गुरु के आदेश से समाज-सुधार के विशेष कार्य का भार संभाला । यह कार्य था सारे अछूतों को निमंत्रित करके उन्हें हिंदू-समाज की

मुख्य धारा में ग्रहण करना ।

बंगाल में नये वैष्णव आंदोलन का यह विशेष सामाजिक महत्व था । नित्यानंद को इसकी प्रेरणा चैतन्य से मिली । चैतन्य ने उन्हें पुन: गृहस्थाश्रम ग्रहण करने के लिए कहा क्योंकि बंगाल में सामाजिक कार्य करने के लिए वही जीवन उनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त था ।

पुरी में कोई दो वर्ष रहने के बाद चैतन्य पुन: तीर्थ-यात्रा पर निकले । यह सन 1513 की बात है । वे वृंदावन के पुराने स्थान पर जाना चाहते थे । उनकी राय के अनुसार उनके भक्त अनुयायी लोकनाथ ने वहां पुनरुद्धार का कार्य शुरू करवा रखा था । चैतन्य कृष्ण के पारस्परिक निवास-स्थान वृंदावन पहुंचने के लिए बंगाल की ओर रवाना हुए । बंगाल में चैतन्य उत्तर बंगाल की राजधानी गौड के निकट रामकेलि पहुंचे । उनकी यात्रा यहीं समाप्त हो गयी और वे उत्तर भारत में आगे नहीं जा पाये । चैतन्य का वृंदावन जाने का दीर्घकालीन स्वप्न इस बार पूरा नहीं हो पाया ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि चैतन्य के पहले वृंदावन के पवित्र स्थानों का लगभग लोप ही हो चुका था । इसके पुनरुद्धार का कार्य चैतन्य के आदेश पर उनके अनुयायियों ने ही किया ।

चैतन्य अपने संन्यास काल से ही कृष्ण-लीला की स्मृति से पावन हुए वृंदावन की विलुप्त गरिमा के पुनरुद्धार के लिए चिंतित थे । उन्होंने पहले अपने अनन्य भक्त लोकनाथ को वृंदावन के उपेक्षित पड़े स्थानों के पुनरुद्धार का प्रशस्तकर कार्य करने के लिए प्रेरित किया । चैतन्य के तुरंत पूर्व महान वैष्णव संन्यासी माधवेंद्रपुरी में ही इसके पहले वृंदावन के विलुप्त गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा की तीव्र इच्छा जगी थी ।

किंतु माधवेंद्रपुरी की इच्छा इस दिशा में रचनात्मक कार्य के अभाव में पूरी नहीं हो सकी । चैतन्य और उनके अनुयायियों ने ही इस कार्य को पूर्ण किया । चैतन्य के शिष्यों ने कृष्ण और राधा की पवित्र स्मृति से संबंधित वृंदावन के प्राचीन स्थानों का निर्धारण किया । धीरे धीरे वृंदावन की नयी नगरी बस गयी जिसमें सुंदर मंदिर और अनेक स्मारक आदि थे । कहा जाता है कि अपने संन्यास काल के आसपास चैतन्य ने लोकनाथ को वृंदावन में जाकर प्रशस्तकर कार्य करने के लिए निर्दिष्ट किया । उन्होंने यह कार्य नि:स्वार्थ भक्ति-भावना से किया । बाद में वृंदावन के विलुप्त गौरव के पुनर्प्रतिष्ठा के कार्य में लोकनाथ को रूप और सनातन से बहुत सहायता मिली ।

जब सन 1513 के लगभग वृंदावन जाने के लिए चैतन्य बंगाल के लिए रवाना हुए उस समय केवल लोकनाथ ही उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिए वृंदावन में थे । रूप और सनातन अभी चैतन्य के प्रभाव में नहीं आये थे । बंधु रूप और सनातन चैतन्य से उनके रामकेलि पहुंचने पर ही पहली बार मिले ।

दोनों भाई उच्च क्षमतावान विद्वान थे । वे बंगाल के शासक हुसेन शाह के दरबार

में उच्च पदाधिकारी भी थे । राजकीय तौर पर रूप की उपाधि 'दाविर खास' और सनातन की उपाधि 'साकेर मलिक' थी । अपने राजकीय पद के कारण उन्हें उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी ।

रामकेलि में वे चैतन्य से पहली बार मिले और यह मिलन उनके जीवन में मोड़ बन गया । चैतन्य के तीव्र आध्यात्मिक व्यक्तित्व ने उन पर ऐसा गंभीर प्रभाव डाला कि उन्होंने लौकिक जीवन का पूर्ण परित्याग कर दिया और वैष्णव मतानुयायी बन गये । चैतन्य ने ज्येष्ठ भाई को 'सनातन' और कनिष्ठ भाई को 'रूप' नाम दिया ।

उनके अनुयायी बनने के बाद चैतन्य ने उन्हें वृंदावन में रहकर उसे नवीन वैष्णव मत का केंद्र बनाने के लिए कहा । बाद में रूप और सनातन ने अपना संन्यासी और विद्या-व्यसनी जीवन वृंदावन में ही व्यतीत किया उन्होंने गौडीय वैष्णव संप्रदाय के लिए आधिकारिक दार्शनिक और धार्मिक साहित्य की रचना की ।

जब चैतन्य रामकेलि आये तो सनातन और रूप वहीं रहते थे । दोनों भाई चैतन्य की धार्मिक भाव-विह्वलता से प्रभावित हुए और उनके आकर्षण में बंध गये । उनके मन में बहुत बड़ा परिवर्तन आया और मानसिक तौर पर उनका उसी दिन मतांतरण हो गया । लेकिन उन्होंने वहीं चैतन्य का अनुसरण नहीं किया । उन्होंने कुछ समय बाद संन्यास जीवन ग्रहण किया ।

रामकेलि गंगा तट पर गौड के बहुत पास था । गौड के बाहर भी एक दल का किला था जो बंगाल के शासक हुसेन शाह की राजधानी था । रामकेलि में अधिक संख्या में ब्राह्मण रहते थे । चैतन्य के वहां चार पांच दिन प्रवास के दौरान लोग बड़ी संख्या में उनके पास आये । चैतन्य के चित्ताकर्षक भक्ति-आकर्षण से प्राय: जनता उनके प्रति आकृष्ट हुआ करती थी । जब वे रामकेलि से वृंदावन के लिए रवाना होने वाले थे तो एक बहुत बड़ी भीड़ से घिर गये ।

जब हुसेन शाह को पता चला कि इतनी बड़ी संख्या में लोग चैतन्य के दर्शन के लिए रामकेलि में एकत्रित हो रहे हैं तो उसने अपने दूत केशव क्षेत्री को पूरी बात का पता लगाने और वापस आकर दरबार में बताने के लिए भेजा । केशव क्षेत्री ने चैतन्य के सामूहिक धर्म आकर्षण को देखा और सुल्तान को इसकी सूचना दी ।

चैतन्य रामकेलि में अपने प्रवास की बात को फैलाये बिना ही रहना चाहते थे । लेकिन ऐसा हुआ नहीं क्योंकि उनके पास विशाल भीड़ एकत्रित होने लगी और इसका समाचार हुसेन शाह के दरबार तक पहुंच गया । चैतन्य के नये प्रशंसक रूप और सनातन को यह बात अच्छी नहीं लगी ।

ऐसा कहा जाता है कि दोनों भाई छिपकर चैतन्य से रात को मिले और उनसे अनुरोध किया कि वे सुरक्षा के लिए अविलंब वह स्थान छोड़ दें । उन्होंने उनसे यह भी प्रार्थना की कि वे अपने साथ इतनी भीड़ लेकर वृंदावन की तीर्थ-यात्रा पर न जायें ।

सनातन और रूप ने पास ही निवास करने वाले विकट शासक की भी बात बताई। उसने अभी तक चैतन्य के प्रति कोई असम्मान का भाव प्रकट नहीं किया था। लेकिन उसका विश्वास नहीं किया जा सकता था। हाल में ही इस बादशाह ने उड़ीसा में अनेक मूर्तियों और मंदिरों को विनष्ट किया था। यदि चैतन्य की अत्यधिक लोकप्रियता से उनके मन में द्वेष जागृत हुआ और किसी दुर्भावना-ग्रस्त सलाहकार ने उसके मन में यह आग भड़कायी तो फिर चैतन्य की जान को खतरा आ सकता था। इसलिए उन्होंने चैतन्य को अविलंब वापस चले जाने के लिए कहा।

चैतन्य अपनी जान के लिए चिंतित नहीं थे लेकिन वे अपने सच्चे नये अनुयायी सनातन के अनुरोध को ठुकरा भी नहीं सकते थे। सनातन के मन की रक्षा के लिए चैतन्य ने इस बार वृंदावन जाने का विचार छोड़ दिया और पुरी वापस लौट आये।

चैतन्य उस बार पुरी में केवल कुछ महीनों के लिए रुके। तदुपरांत सन 1514 में वे पुन: उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा पर रवाना हुए। इस तीर्थ-यात्रा का मुख्य उद्देश्य वृंदावन पहुंचना था जो वे पिछले यात्रा-क्रम में नहीं कर पाये थे। इस बार उनकी दीर्घकालीन आकांक्षा पूरी हुई और उन्होंने कृष्ण-लीला की पावन स्मृतियों से जुड़ी हुई पवित्र नगरी में पदार्पण किया।

उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा में चैतन्य अपने साथ केवल एक अनुयायी ले गये। यह यात्रा उनकी दक्षिण भारत और पश्चिम भारत की पिछली यात्रा से अधिक विस्तृत रही। उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा में दक्षिण-पश्चिमी भारत की उनकी यात्रा के दौरान घटी जैसी महत्वपूर्ण बाह्य घटनाएं भी नहीं घटीं।

वृंदावन ने उन्हें अन्य सारे तीर्थों से अधिक आकृष्ट किया किंतु वे वहां अधिक दिनों तक नहीं रुके। उन्होंने पुरी में ही स्थायी वास करने का निश्चय कर लिया था। वृंदावन से लौटते हुए चैतन्य कुंभ मेला उत्सव के दौरान गंगा-यमुना और सरस्वती के पवित्र संगम प्रयाग में रुके।

प्रयाग में चैतन्य की भेंट अनेक संत पुरुषों और प्रतिष्ठित विद्वानों से हुई। इनमें वल्लभ भट्ट (वल्लभ संप्रदाय के विख्यात प्रवर्त्तक वल्लभाचार्य नहीं) और तिरहुत (उत्तर बिहार) के प्रसिद्ध वैष्णव विद्वान और भक्तिपद रचयिता रघुपति उपाध्याय थे।

यहां चैतन्य की भेंट सनातन के छोटे भाई रूप से हुई। इन दोनों से उनकी प्रथम भेंट रामकेलि में हुई थी। इस बार रूप सभा के लिए गृह त्याग कर गुरु का अनुसरण करने प्रयाग आये थे। रूप के साथ उनके कनिष्ठतम भाई वल्लभ या अनुपम भी थे जो जीव के पिता थे।

चैतन्य ने रूप से प्रयाग में भेंट होने के बाद ही उन्हें वृंदावन भेज दिया। चैतन्य ने रूप को अन्य शिष्यों के साथ वृंदावन के प्राचीन गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा के कार्य में लगने और उसे वैष्णव मत का धार्मिक केंद्र बनाने के लिए प्रेरित किया। रूप इस उद्देश्य की

पूर्ति के लिए शेष जीवनपर्यंत वृंदावन में ही रहे और एक बार केवल दस महीने के लिए गुरु के पास रहने के लिए पुरी आये।

चैतन्य प्रयाग से वाराणसी आये। वाराणसी को भारत की आध्यात्मिक राजधानी कहा जा सकता है। यहां आकर उनसे सनातन मिले। और जैसा पहले कहा जा चुका है उन्हें भी चैतन्य ने वृंदावन जाने के लिए निर्देश दिया। सनातन भी बाद में कुछ समय चैतन्य के साथ बिताने के लिए पुरी आये। सनातन से वाराणसी में भेंट होने पर चैतन्य ने उन्हें भी वृंदावन जाने की सलाह दी। सनातन तुरंत बाद वहां चले गये।

उस समय वाराणसी शैव मतावलंबियों का महान केंद्र था और अद्वैत वेदांत का पीठ था। वाराणसी के शिवपूजक संन्यासियों पर चैतन्य की उपस्थिति का कोई गंभीर प्रभाव नहीं पड़ा। इस पावन नगरी में उनके आने के परिणामस्वरूप एक ही महत्वपूर्ण मतांतरण हुआ। कहा जाता है कि वाराणसी के वेदांतियों के नेता प्रकाशानंद सरस्वती चैतन्य के कारण वैष्णव मतानुयायी हो गये। इसके अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण घटना यात्रा के इस भाग में नहीं घटी। चैतन्य की उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा सन 1515 के लगभग समाप्त हुई और वे पुरी वापस लौट आये।

चैतन्य के कुछ जीवनचरित लेखकों के अनुसार उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र का चैतन्य से औपचारिक परिचय उनके वृंदावन से लौटने के बाद हुआ। प्रताप रुद्र ने चैतन्य के प्रति अपनी भक्ति समर्पित की। कहा जाता है कि इस भेंट के पहले चैतन्य राजा के संपर्क में आने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि वे उन्हें लोकानुरागी धनी व्यक्ति मानते थे। लेकिन अतीव समर्पण और आदर की अभिव्यक्ति देखकर चैतन्य के मन में राजा के प्रति करुणा जागी। प्रताप रुद्र से संबंधित यह घटना गौडीय मत के इतिहास और चैतन्य के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है।

जब चैतन्य वृंदावन की तीर्थ-यात्रा से पुरी वापस आए उनकी आयु तीस वर्ष की थी। संन्यास के उपरांत भारत के विभिन्न भागों की तीर्थ-यात्रा में छह वर्ष लग गये थे। किंतु इसके बाद वे कभी पुरी से बाहर नहीं गये। बंगाल के वैष्णवों से उनका संबंध शिवानंद सेन के तत्वावधान में होने वाली बंगाल के शिष्यों की वार्षिक पुरी यात्रा के माध्यम से बना रहा।

पुरी में अंतिम प्रवास

चैतन्य सन 1515 से लेकर अपने निधन-वर्ष सन 1533 तक 18 वर्षों तक पुरी में रहे। जयानंद और कवि कर्णपुर द्वारा अपनी रचनाओं में दिये गये विवरण के अनुसार चैतन्य पुरी में काशीश्वर मिश्र के आश्रम में निवास करते थे। एक अन्य स्रोत के अनुसार चैतन्य अपने जीवन के अंतिम 12 वर्ष गंभीर में रहे। गंभीर उपर्युक्त काशीश्वर मिश्र के ही आश्रम का भाग था। पुरीवासी काशीश्वर मिश्र गुरु के बड़े प्रशंसक और भक्त थे।

जैसा पहले उल्लेख हो चुका है बंगाल के उनके शिष्य वर्ष में एक बार रथ-यात्रा

के अवसर पर उनसे मिलने आया करते थे। उनके बंगाल के अनुयायियों की बड़ी संख्या में वार्षिक तीर्थ-यात्रा गुरु और बंगाल के नए वैष्णव आंदोलन के बीच जीवंत संपर्क का कार्य करती रही। पुरी में उनके निवास के अंतिम 18 वर्ष उनके बंगाल के अनुयायियों के अलावा अन्य अनेक प्रशंसक भक्त और विद्वान उनसे मिलने के लिए आते रहते थे।

अब से जगन्नाथ की वार्षिक रथ-यात्रा उत्सव में चैतन्य द्वारा प्रवर्तित एक विशेष बात भी जुड़ गई। अपने शिष्यों और प्रशंसकों के साथ चैतन्य रथ में जगन्नाथ मूर्ति के पीछे पीछे कीर्तन करते सड़कों पर घूमा करते। जब तक चैतन्य पुरी में रहे यह सामूहिक कीर्तन भी पुरी की प्रसिद्ध रथ-यात्रा का भाग बना रहा।

पुरी में उनके अंतिम प्रवास के दौरान अद्वैत आचार्य और नित्यानंद के अतिरिक्त उनके अन्य प्रमुख शिष्य भी उनसे मिलने और उनके साथ कुछ दिन बिताने के लिए आते रहते थे।

चैतन्य के एक अन्य प्रमुख शिष्य रघुनाथदास संन्यास ग्रहण करके पुरी आ गये और गुरु के साथ रहने लगे। वे चैतन्य के जीवनपर्यंत पुरी में ही रहे और उनके निधन के पश्चात वृंदावन चले गये। पुरी में चैतन्य के जीवन के अंतिम वर्षों का जीवंत विवरण रघुनाथदास के ही कारण उपलब्ध है। रूप गोस्वामी, रघुनाथदास, और रघुनाथ भट्ट के बारे में वृंदावन के छह गोस्वामी से संबंधित अध्यायों में और बातें कही गई हैं।

इनमें से अंतिम शिष्य रघुनाथ भट्ट चैतन्य से मिलने पहली बार पुरी आये। उस बार रघुनाथ भट्ट आठ महीने तक रुके फिर चैतन्य के कहने पर वे घर वापस आ गये और अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद पुनः पुरी चले गये। इस बार भी वे वहां दस महीने रुके रहे और बाद में चैतन्य की इच्छानुसार वृंदावन चले गये।

चैतन्य के पुरी प्रवास के अंतिम अठारह वर्षों में उनके जीवन में कोई अधिक बाह्य घटनाएं नहीं घटीं। इन वर्षों में अधिकांश समय भगवान जगन्नाथ की दैनंदिन पूजा-स्तुति और धार्मिक भावाकुलता के उफान में व्यतीत हुआ। बाहर से उनका इस अवधि का तीव्र भक्ति-पूर्ण जीवन घटना-विहीन लगता है। चैतन्य जैसे संन्यासी का जीवन राजाओं या शासकों की तरह सदैव घटनाओं से भरा नहीं रह सकता था लेकिन धार्मिक दृष्टि से उनके जीवन का यह भाग बहुत महत्वपूर्ण है।

चैतन्य के पुरी में लगातार वर्षों तक रहने का उड़ीसा के वैष्णव मत और आंदोलन पर गंभीर प्रभाव पड़ा। जैसा पहले कहा जा चुका है राजा प्रताप रुद्र चैतन्य के प्रबल प्रशंसक हो गये थे और कभी कभी उनसे मिलने आया करते थे। कुछ लोगों की राय है कि भक्त राजा चैतन्य के शिष्य बन गये थे। लेकिन इसकी ऐतिहासिक पुष्टि नहीं हो सकी है। लेकिन उनके चैतन्य के प्रति समर्पित होने से उड़ीसा में वैष्णव आंदोलन को अप्रत्यक्ष सहायता मिली होगी क्योंकि इससे उनकी प्रजा की दृष्टि में चैतन्य का बहुत महिमामंडित चित्र बना होगा।

2

चैतन्य और उड़ीसा में वैष्णव मत

चैतन्य द्वारा प्रेरित वैष्णव मत के प्रचार के लिए तीन प्रमुख केंद्र थे। बंगाल में नवद्वीप, उड़ीसा में पुरी और उत्तर प्रदेश में वृंदावन।

इन तीनों केंद्रों में चैतन्य मत के इतिहास में उड़ीसा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। डा. बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार चैतन्य 490 सहयोगियों में से कोई 60 गैर-बंगाली थे जिसमें से 44 उड़ीसा के थे। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि चैतन्य अनेक वर्षो तक उड़ीसा में रहे।

उड़ीसा में वैष्णव मत के इतिहास में चैतन्य की भूमिका मूल्यांकन करने में एक बात ध्यान में रहनी चाहिए। चैतन्य के पुरी आगमन के पहले से ही उड़ीसा में वैष्णव मत प्रचलित था। चैतन्य के पूर्व उड़ीसा में वैष्णव मत में प्रवृत्तियां थीं। एक तो, कृष्ण पूजा पर आधारित-मात्र भक्ति-परक धर्म दूसरा, बुद्ध माने जाने वाले जगन्नाथ की भक्ति और ज्ञान का मिश्रण।

जब चैतन्य ने राधा-कृष्ण उपासना पर आधारित अपने मत का प्रचार कार्य शुरू किया तो धीरे धीरे पहले की दोनों प्रवृत्तियां उनके द्वारा प्रचारित नये वैष्णव मत की मुख्य धारा में धीरे धीरे समाहित हो गयीं। इन दोनों प्रवृत्तियों में से दूसरी का अलग अस्तित्व चैतन्य के बाद भी कुछ समय तक बना रहा।

बाद में गौडीय अर्थात बंगाल के वैष्णव मत के साथ इसका एकीकरण श्यामानंद के श्रम से पूर्ण हुआ। वैष्णव भक्त श्यामानंद जीव गोस्वामी के शिष्य श्रीनिवास और लोकनाथ गोस्वामी के शिष्य नरोत्तम के सहकर्मी थे। श्यामानंद और उनके शिष्य रसिकानंद (दोनों ही उड़ीसावासी थे) दोनों ने चैतन्य द्वारा शुरू किये गये नव्य वैष्णव मत के उड़ीसा में प्रचार कार्य को पूरा किया। श्यामानंद और रसिकानंद के ही परिश्रम के कारण सोलहवीं शती के उत्तर-काल और 17 वीं शती के प्रारंभ में चैतन्य के छह महान अनुयायियों (वृंदावन के छह गोस्वामियों के नाम से अधिक विख्यात) द्वारा प्रतिपादित वृंदावन के भक्ति सिद्धांत अर्थात वैष्णव मत उड़ीसा की जनता का प्रमुख धर्म बन गया। चैतन्य द्वारा पुरी में शुरू की गयी प्रक्रिया की यह पूर्णाहुति थी।

अब उड़ीसा में वैष्णव मत के प्रारंभिक-काल की चर्चा करें । उड़ीसा में चैतन्य पूर्व वैष्णव मत के अनेक उदाहरण मिलते हैं । वहां कृष्ण पूजा का प्रचलन था यह तथ्य कृष्ण पूजा के प्रमुख केंद्र के रूप में रेमुना के गोपीनाथ मंदिर के अस्तित्व से प्रमाणित हो जाता है । यहां माधवेंद्रपुरी गोपीनाथ की मूर्ति को देखकर समाधि अवस्था में लीन हो गये थे ।

राजा प्रताप रुद्र के पिता राजा पुरुषोत्तमदेव अनेक स्तोत्रों के रचयिता बतलाये जाते हैं । इनमें से छह स्तोत्रों को रूप गोस्वामी ने अपने संग्रह **पद्यावली** में संग्रहीत किया है । राजा पुरुषोत्तमदेव द्वारा रचित इन श्लोकों से गोपियों के साथ क्रीड़ा कर रहे कृष्ण की पूजा का संकेत मिलता है ।

चैतन्य की कृष्णनाथ कविराज-कृत विख्यात जीवनी **चैतन्य चरितामृत** से पता चलता है कि रामानंद राया चैतन्य के संपर्क में आने से पहले ही वैष्णव भक्ति पूजा के अभ्यासी थे । यह भी माना जाता है कि रामानंद राया ने चैतन्य से परिचय होने के पहले ही **जगन्नाथ बल्लभ नाटक** की रचना की क्योंकि इस नाटक में चैतन्य का नामोल्लेख नहीं है **जगन्नाथ बल्लभ नाटक** में रामानंद ने अत्यंत कुशलता से राधा की अपने भगवान के प्रति प्रमोन्मुख भक्ति के विभिन्न भावों का वर्णन किया है ।

कहा जाता है कि रामानंद राया ने चैतन्य के सम्मुख 'पहला ही राग नयन भंग भेला' से शुरू होने वाला प्रसिद्ध पद गाया । यह पद स्वयं रामानंद का रचा हुआ था । इसकी सूचना कवि कर्णपुर के **महाकाव्य** और कृष्णदास कविराज के **चैतन्य चरितामृत** से मिल जाती है । रामानंद राया रचित यह **ब्रजावली** पदों से पता चलता है कि वे विद्यापति की पदावलियों से भी परिचित थे ।

इन साहित्यिक और अन्य प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चैतन्य के उदय के पहले से ही उड़ीसा में कृष्ण-राधा उपासना पर आधारित वैष्णव मत की यह धारा प्रचलित थी ।

इस संबंध में यह भी स्मरणीय है कि पहले उड़ीसा में बौद्ध धर्म का काफी प्रसार था । बाद में बौद्ध धर्म क्षीणोन्मुख अवस्था में उड़ीसा के अनेक बौद्ध मूल सनातन हिंदू धर्म में वापस आ गये । किंतु हिंदू धर्म की मुख्य धारा में वापस आने के बाद भी उनके कुछ बौद्ध झुकाव बने रहे । उन्होंने जगन्नाथ को बुद्ध के रूप में ही ग्रहण किया और इस धारणा के कारण जगन्नाथ की मूर्ति की उपासना करने लगे । उनके अनुसार श्रीकृष्ण ही बुद्ध के रूप में और जगन्नाथ के नाम से 'सारी दुष्ट शक्तियों को पराभूत करने के लिए' अवतरित हुए हैं । जगन्नाथदास के **दास ब्रह्म** और अच्युत-कृत **शून्य संहिता** में इन विचारों का प्रतिपादन देखा जा सकता है । ये दोनों ही उड़ीसा में इस विचारधारा के प्रसिद्ध प्रवक्ता रहे हैं ।

समान विचारों वाले उड़ीसा के वैष्णवों द्वारा रचित ग्रंथों से उनकी विशेष

उपासना-रीति को समझा जा सकता है । वे (बौद्ध) 'यंत्र' से निर्गुण ब्रह्म की उपासना किया करते थे और साथ ही राधा-कृष्ण मंत्र और पश्चानुवर्ती 32 मंत्रों के जप पर भी पूजा करते थे । यह सिद्धांत जगन्नाथदास के **रसकृद**, बलरामदास के **वट अवकाश** और **विराट गीता**, अच्युत के **अनाकार संहिता** और **शून्य संहिता** तथा **शिव स्वरोदय** में प्रतिपादित था ।

यह भी पता चलता है कि चैतन्य गजन्नाथदास के **श्रीमद्भागवत** पाठ पर मुग्ध थे । इसका तात्पर्य है कि उड़ीसा के भक्तों में **श्रीमद्भागवत** की प्रतिष्ठा थी ।

इस विशेष संप्रदाय अर्थात पूर्व बौद्धों के अनुयायियों में पांच प्रमुख थे और वे 'पंच सखा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन प्रमुख पांचों के नाम हैं — जगन्नाथदास, वलरामदास, अच्युतानंद, अनंत और यशोवंतदास ।

इन पंच सखाओं में से प्रत्येक चैतन्य से व्यक्तिगत रूप में परिचित था और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था । इनमें से प्रत्येक उड़िया भाषा में पुस्तकें रचने के लिए विख्यात हुआ । पंच सखाओं के नाम और चैतन्य से उनके संबंधों का उल्लेख **चौरासी आज्ञा** नामक पुस्तक में है । इस पुस्तक के लेखक सुदर्शनदास पंच सखाओं में से एक यशोवंतदास के पट्ट-शिष्य थे । यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है । डा. बिमान बिहारी मजूमदार ने अपनी शोध कृति **श्रीचैन्तय चरितेर उपादान** में इसकी पांडुलिपि का उल्लेख किया है ।

पंच सखाओं में से ही एक अच्युतानंद ने पांचों मित्रों के साथ चैतन्य की घनिष्ठता के बारे में अपनी पुस्तक **शून्य संहिता** में लिखा है । इसके लेखक ने यह भी लिखा है कि चैतन्य के कहने पर सनातन ने अच्युतानंद को मंत्र दिया । संभव है कि अच्युत पहले चैतन्य के पास दीक्षा के लिए गये हों । लेकिन चैतन्य ने उन्हें सनातन गोस्वामी से दीक्षित होने के लिए कहा हो । ईश्वरदास-कृत **चैतन्य भागवत** की अप्रकाशित उड़िया पांडुलिपि के अनुसार भगवान जगन्नाथ की मूर्ति ने अच्युतानंद को चैतन्य से दीक्षित होने का आदेश दिया ।

अच्युतानंद इस संप्रदाय के महत्वपूर्ण व्यक्ति थे । उन्होंने गोपाल मठ की स्थापना की । उड़ीसा की गोप जातीय अधिकांश लोग इस मठ के अनुयायी थे । अच्युतानंद भी इसी जाति के थे । उनका जन्म कटक जिले के त्रिपुर गांव में हुआ था । उनकी मां का नाम पद्मावती और पिता का नाम दीनबंधु खुंटिया था ।

इस संप्रदाय के एक अन्य अगुआ वलरामदास को स्वयं चैतन्य ने दीक्षा दी । जब चैतन्य संन्यासी होने के बाद कटक जाने के लिए जाजपुरा से होकर गुजर रहे थे उन्हें वलरामदास मिले । वलरामदास चंद्रपुर में जन्मे माने जाते हैं । उनके पिता सोमनाथ महापात्र उत्कल के राजा के दरबारी थे । वलरामदास **जगमोहन रामायण** के रचियता के रूप में प्रसिद्ध हुए । कहा जाता है कि वे हमेशा चैतन्य के साथ रहकर उनकी सेवा

किया करते थे ।

पांच सखाओं में से जगन्नाथदास चैतन्य की ही आयु के थे। चैतन्य उनके श्रीमद्भागवत पाठ से बहुत संतुष्ट हुए। गुरु ने अपने शिष्य वलरामंदास को जगन्नाथ को मंत्र देने के लिए कहा। एक पुस्तक में लिखा है कि जगन्नाथ प्रातःकाल चैतन्य का मुंह धोया करते थे और अन्य रूपों में भी उनकी सेवा किया करते थे।

उड़ीसा के वैष्णवों में जगन्नाथदास समादृत भक्त थे। प्रदेश के हर भाग में उनके भागवत को काफी ऊंचा स्थान दिया जाता है। उन्हीं को पुरी में स्वामी मठ की स्थापना का श्रेय भी दिया जाता है। तारिणी चरण रथ ने **उत्कल साहित्य का इतिहास** में चैतन्य के साथ उनके भी उड़ीसा के वैष्णव मत पर गहन प्रभाव का उल्लेख किया गया है। अनंतदास (मोहांति) भी पंच सखाओं में थे। कहा जाता है कि कोणार्क के सूर्य ने उनसे स्वप्न में चैतन्य से दीक्षित होने के लिए कहा। अनंत मोहांति ने चैतन्य को प्रथम बार कोणार्क में ही देखा और उनसे दया याचना की। चैतन्य ने नित्यानंद से अनंत को दीक्षित करने के लिये कहा और वे मत में दीक्षित कर लिये गये।

यशोवंतदास पंच सखाओं में से अंतिम थे। चैतन्य ने उन्हें स्वयं दीक्षा दी। ईश्वरदास-कृत **चैतन्य भागवत** के अनुसार भगवान जगन्नाथदेव की मूर्ति ने यशोवंतदास को गुरु से दीक्षित होने की राय दी।

ये सारे पंच सखा पहले बौद्ध थे और चैतन्य ने उन्हें वैष्णव मत में दीक्षित किया। लेकिन अपने मत और चैतन्य के प्रभाव में रहने के बाद भी बौद्ध धर्म के कुछ अंश उनमें बने रहे और वे ब्रजभूमि के प्रेम धर्म को पूरे मन से नहीं स्वीकार कर पाये। उनका सिद्धांत भी गौडीय वैष्णव मत से अलग पड़ता है लेकिन इस अंतर के बावजूद उन्हें अवैष्णव नहीं कहा जा सकता। वे चैतन्य को बुद्धदेव का अवतार मानकर पूजते थे।

कुछ वैष्णव विद्वानों के अनुसार समय समय पर उड़िया भक्तों ने चैतन्य के कम से कम 15 जीवनचरित लिखे हैं। इनमें से कुछ उदाहरण के लिए — ईश्वरदास-कृत **चैतन्य भागवत**। कुछ चैतन्य के निधन के एक सौ या डेढ़ सौ वर्षों के बाद की लिखी हो सकती हैं। इनमें से कुछ अभी तक प्रकाशित नहीं है और हस्तलिखित रूप में ही हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से चैतन्य पर लिखी गयी उड़िया कृतियों में कनाई खुंटिया-कृत **महाप्रकाश** अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका लेखक पुरी में गुरु का घनिष्ठ भक्त था।

उड़ीसा में और भी अनेक अनुयायी और साथी थे पर यहां उन सभी का उल्लेख करना कोई आवश्यक नहीं। न ही उड़ीसा में चैतन्य पंथ के संपूर्ण इतिहास की खोज के लिए इसकी आवश्यकता है। यह प्रक्रिया तभी शुरू हो चुकी थी जब राया रामानंद और राजा प्रताप रुद्र चैतन्य के अत्यंत प्रशंसक बन गये थे। कृष्ण उपासना के जीवंत प्रतीक के रूप में पुरी में उनके 20 वर्षों के निवास-काल में यह उनके अन्य उड़िया शिष्यों

और अनुयायियों के माध्यम से विकसित हुआ है। चैतन्य के एक पट्ट-शिष्य श्यामानंद के काल में यह अपनी चरम अवस्था में पहुंचा जबकि गौडीय वैष्णव मत ने उड़ीसावासियों में अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त की।

उनके संन्यास का आदर्श

चैतन्य ने पुरी में अपने जीवन के अंतिम भाग के दिन अपने कुछ चुने हुए शिष्यों के साथ व्यतीत किए। क्रमश: वे उपासना के उद्रेक में इतने उन्मत रहनें लगे कि उनके लिए स्वयं अपनी भी परवाह कर पाना कठिन हो गया था। स्वरूप दामोदर, गोविंद और अन्य भक्त शिष्यों और साथियों द्वारा उनकी रक्षा और सम्हाल आवश्यक हो गये थे।

दूसरी ओर चैतन्य नियम-निष्ठ संन्यासी के सारे कर्तव्यों का कठोरता से पालन करते हुए कष्टसाध्य जीवन व्यतीत करते थे। उनके स्वाभाव में मृदुता और कठोरता दोनों बातें थीं।

चैतन्य के अठारह वर्षों के व्यक्तिगत जीवन की झलकियां विविध समकालीन विवरणों में मिलती हैं। उनसे गुरु द्वारा संन्यास के उच्च आदर्शों के पालन पर कुछ रोशनी पड़ती है। वे कभी भी भावाकुलतावश संन्यास के सच्चे आदर्श पथ से विचलित नहीं हुए। उन्होंने पूर्णतया कठोरता और निष्ठा के साथ उनका पालन किया।

यह देखा जा सकता है कि यद्यपि उनके धार्मिक जीवन में पूर्ण वैराग्य और भाव-विह्वल व्यक्ति की प्रधानता थी, वे सदैव संन्यास आचरण के विषय में बहुत गंभीर थे। वे संन्यास के सारे कष्टों का पालन करने के लिए अत्यंत तत्पर रहते थे। उन्होंने अपने सहयोगियों एवं भक्तों के सम्मुख संन्यास का उच्च आदर्श स्थापित किया।

वे अपने अनुयायियों को जितना उपदेश देते थे उससे अधिक स्वयं पालन करते थे। एक शिष्य को उन्होंने सलाह दी – "अच्छा भोजन मत करो, अच्छे वस्त्र मत पहनो, घास की तरह विनयी बनो और तरु की तरह धैर्यवान, सबका आदर करो और निरंतर संकीर्तन करो।" और स्वयं भी इसका पालन किया।

उनके भोजन, वस्त्र, जीवन-रीतियां आदि अत्यंत सरलतम संभव थीं। वे रात्रि में कड़े फर्श पर सोया करते थे और अलस सुबह जाड़ों में भी शीतल जल से स्नान किया करते थे। गुरु के कष्ट सहन से संतप्त होकर उनके एक सहकारी जगदानंद ने एक रात के लिए कभी तकिया रख दिया। चैतन्य ने उन्हें खूब डांट लगायी और सुविधा स्वीकार नहीं की।

एक बार किसी भक्त ने उन्हें एक शीशी सुगंधित तेल दिया। उन्होंने आदेश दिया कि यह तेल जगन्नाथ मंदिर में आरती में जला दिया जाये।

चैतन्य को यह बहुत नापसंद था कि उनके जगदानंद और मुकुंद जैसे साथी आकर निजी सुविधाओं के लिए इतनी तकलीफ उठाएं। उनकी अनवरत देखभाल को वे गृहस्थ

जीवन की विशेषता, मोह का पाश मानते थे । उन्होंने उन्हें अपनी सुविधाओं का विशेष ख्याल रखने से मना कर दिया था । चैतन्य का धार्मिक जीवन मुख्यत: उत्कट भावनात्मक अनुभूति पर ही आधारित था । रूप गोस्वामी ने लिखा है कि किस तरह गुरु अधरों पर कृष्ण का नाम ले अश्रु बहाया करते थे, रथ-यात्रा उत्सव के समय जगन्नाथ के रथ के सामने भाव-विह्वल होकर नाचने लगते थे, किस तरह पुरी के समुद्र तट पर झाऊ का जंगल देखकर वृंदावन के दृश्य याद आ गये । दूसरे भी विवरणों से पता चलता है कि किस तरह समुद्र तट पर रेत का ढेर देखकर चैतन्य गिरि गोवर्धन की बात सोचा करते थे और ग्वाल-बालों को गाय चराते हुए देखकर उन्हें कृष्ण के वृंदावन के गोप-बालक समझते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया करते थे । **ब्रज-लीला** से प्रेरित होकर वे हमेशा कृष्ण से वियोग का अनुभव किया करते थे और इस प्रकार 'राधा-भाव' की मधुर अनुभूति का आनंद पाते ।

यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि किस तरह ऐसा आदर्शवादी भाव-विह्वल अनुभूतियों वाला पुरुष संन्यास के कठोर आचारों का पालन कर सका या वह किस तरह अपने शिष्यों को इन कष्टों का पालन करने के लिए प्रेरित कर सका । लेकिन इस विषय में कोई संदेह नहीं था । चैतन्य का चरित्र एकदम निष्कलंक था । सारे समकालीन विवरणों से इसकी पुष्टि होती है । अपनी मोहक भावुकता के बावजूद वे कभी भी संन्यास के कठोर आदर्श से विचलित नहीं हुए । गुरु की वैराग्य भावना की पुष्टि के लिए कुछ प्रामाणिक स्रोत से यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं ।

मुख्य बात यह है कि चैतन्य सामान्यतया सदैव औरतों से दूर रहा करते थे । वास्तविक भक्त वृद्धा महिलाएं भी उनके दर्शन के लिए आतीं तो उन्हें भी वे कभी अपने निकट नहीं बैठने देते थे । जहां तक नारियों का संबंध था वे बहुत ही कठोर थे ।

कृष्णदास कविराज ने अपने **चैतन्य चरितामृत** में यह स्पष्ट लिखा है कि नारियां दूर से दर्शन किया करती थीं । 'हमेशा की तरह भगवान उनसे मिले । नारियों ने दूर से उनका दर्शन किया ।'

चैतन्य के समकालीन भक्तों ने लिखा है कि गुरु 'स्वयं नियमों पर आचरण करके दूसरों को उनका पालन करना सिखाते थे ।'

मुकुंद की वृद्धा मां से संबंधित घटना भी यहां उल्लेख योग्य है । मुकुंद चैतन्य के नवद्वीप में बाल्य-काल से ही उनके घनिष्ठ मित्र थे । वे जब पुरी में रहते थे तो उसे मुकुंद के माता-पिता बंगाल के अन्य तीर्थ-यात्रियों के साथ रथ-यात्रा उत्सव के समय वहां आये । मुकुंद के पिता परमेश्वर मोदक की नवद्वीप में मिठाई की दुकान थी । चैतन्य बाल्यावस्था में परमेश्वर की दुकान पर जाया करते थे और वह उन्हें तरह तरह की मिठाइयां खिलाया करते थे । यह सुनकर कि चैतन्य संन्यासी होकर पुरी में रह रहे हैं और अगणित लोग उनकी पूजा करने जाते हैं, परमेश्वर भी अपनी पत्नी के साथ उनके

दर्शन के लिए आये। वे उनका आशीर्वाद पाना चाहते थे।

वे भीड़ से निकलकर चैतन्य के सम्मुख आये और गुरु को प्रणाम करते हुए कहा — "मैं परमेश्वर हूं।"

चैतन्य ने उन्हें पहचान लिया। वे उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पूछा — "कैसे हो परमेश्वर? अच्छा हुआ कि तुम आये।"

तब परमेश्वर ने उनसे कहा — "मुकुंद की मां भी आई है।" लेकिन यह सुनकर कि मुकुंद की मां अर्थात परमेश्वर की पत्नी भी उनके दर्शन करने आई हैं, महाप्रभु संकोच में पड़ गये।

चैतन्य इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि वे पड़ोसी रहे थे और उनको बाल्यावस्था में स्नेहमय व्यवहार किया करते थे। चैतन्य चाहते थे कि उसको पास बिठलाकर उससे कुछ शब्द कहें लेकिन यह सोचकर कि इससे संन्यास आचार में ढीलापन आ जायेगा और मुकुंद की मां को देख कर अन्य नारियां भी उनके निकट आने लगेंगी उन्होंने कुछ असुविधा महसूस की। कृष्णदास कविराज ने स्वलिखित चैतन्य के जीवनचरित में 'अंत लीला' भाग में इस घटना का वर्णन किया है।

फिर कनिष्ठ हरिदास की भी कथा है। वह कीर्तन गायन और चैतन्य के परम भक्त थे। एक दिन भगवान आचार्य ने उनसे गुरु को निमंत्रित करने के लिए कहा। कनिष्ठ हरिदास ने शिखी मैती की बहन माधवीदेवी से थोड़ा-सा चावल मांगा। माधवीदेवी वृद्धा तो थीं ही सच्ची भक्तिन भी थीं। जब चैतन्य को भगवान आचार्य से पता चला कि हरिदास ने चावल लेने के लिए ही सही माधवीदेवी से बातचीत की है तो उन्होंने इस बात को बड़ी गंभीरता से लिया। उन्होंने अपने परिचर गोविंद को आदेश दिया — "आगे से कभी कनिष्ठ हरिदास को यहां न आने देना। मेरे इस आदेश का पालन करो।"

हरिदास यह जानकर बहुत दुखी हुआ कि आचार्य के द्वार उसके लिए बंद हो गये हैं। लेकिन किसी से उसे इस कष्टदायी आदेश का कारण नहीं ज्ञात हो सका।

कनिष्ठ हरिदास की दुखद अवस्था देखकर चैतन्य के स्वरूप दामोदर और अन्य निकट शिष्य बहुत चिंतित हुए। एक दिन उन्होंने गुरु से पूछा कि हरिदास से क्या त्रुटि हुई है। चैतन्य ने यह स्मरणीय उत्तर दिया — "मैं किसी ऐसे साधु का चेहरा नहीं देखना चाहता हूं जो किसी औरत को संबोधित करता है। अनिवार आवेग पराभूत कर देते हैं। नारी ऋषियों के मन को वशीभूत कर लेती है।"

गुरु ने धर्मशास्त्रों का उद्धरण देते हुए कहा — "मौसी और पुत्री के भी निकट नहीं बैठना चाहिए क्योंकि विद्वान पुरुष भी सशक्त आवेगों के आकर्षण में आ जाते हैं।"

यह उपदेश सुनकर भक्तों ने सिर झुकाया और चले गये। कुछ दिनों बाद वे पुनः चैतन्य के पास कनिष्ठ हरिदास की सिफारिश करने आये। उन्होंने कहा — "महाप्रभु, उसे इस छोटी त्रुटि के लिए क्षमा कर दें। उसे सबक मिल चुका है, अब वह फिर ऐसी

त्रुटि नहीं करेगा ।"

चैतन्य फिर भी ढीले नहीं पड़े । उन्होंने उनसे कहा — "मैं इस विषय के संबंध में अपने मन को नम्र नहीं कर सकता । किसी नारी से बातचीत करने वाला संन्यासी मेरी दृष्टि के आगे नहीं आना चाहिए । तुम लोग अपने अपने काम में लगो और यह बेकार बात बंद करो । यदि इसके बारे में पुनः बात की तो फिर तुम लोग मुझे यहां नहीं देखोगे ।"

महाप्रभु का इतना कठोर रुख देखकर भक्तों ने स्वप्न में भी नारियों से बातचीत करना छोड़ दिया और अभागा कनिष्ठ हरिदास गंगा और यमुना के संगम पर त्रिवेणी के जल में जाकर डूब गया ।

चैतन्य के विश्वासपात्र और स्थायी परिचर गोविंद उस समय पुरी में ही रहते थे । वे नारियों के संबंध में गुरु के रुख से अच्छी तरह अवगत थे । इसलिए वे हमेशा यह ध्यान रखा करते थे कि चैतन्य धर्म भाव-विह्वलता के क्षणों में किसी नारी के सम्मुख न पड़ें । चैतन्य ने स्वयं गोविंद को यह विशेष निर्देश दे रखा था । जिस अवसर पर चैतन्य ने यह निर्देश दिया उसका विवरण यहां दिया जा रहा है ।

एक दिन चैतन्य गोविंद के साथ योमेश्वर टोटा के यहां जा रहे थे । रास्ते में जयदेव रचित **गीत-गोविंद** की गुर्जरी राग में चित्ताकर्षक तान सुन कर वे मुग्ध हो गये । **गीत-गोविंद** के गान से मुग्ध होकर चैतन्य समाधि में चले गये और बेसुध अवस्था में उस ओर भागने लगे जिधर से वह धुन आ रही थी । लेकिन वह गीत किसी गायिका द्वारा गाया जा रहा था इसलिए गोविंद महाप्रभु के पीछे पीछे भागता गया और वहां पहुंचने के पहले ही उन्हें रोककर उनसे कहा — "यह कोई नारी गा रही है ।"

'नारी' शब्द सुनकर चैतन्य में लौकिक चेतना लौट आई और वे उस दिशा से मुड़कर वापस चल आये । फिर उन्होंने गोविंद से कहा — "आज तुमने मेरे जीवन की रक्षा की है । यदि मैं इस मनोदशा में अनजाने उसके पास पहुंच जाता तो मेरी मृत्यु हो जाती । मैं तुम्हारा यह ऋण कभी चुका नहीं सकूंगा । तुम हमेशा मेरे साथ रहोगे और ध्यान रखते हुए हर जगह मुझे बचाओगे ।"

कृष्णदास कविराज ने स्ववृत्त **चैतन्य चरितामृत** के 'अंत लीला' भाग में इस घटना का वर्णन किया है । कृष्णदास कविराज को गुरु के जीवन के अंतिम भाग के विषय में इन तथ्यों की सूचना रघुनाथदास से मिली थी । रघुनाथदास चैतन्य के महत्वपूर्ण शिष्यों में थे और लगातार सोलह वर्षों तक पुरी में उनके समीप रहे थे । इसलिए गुरु के जीवन के अंतिम भाग के विषय में कृष्णदास कविराज द्वारा दिए गये विवरण को प्रमाणित माना जा सकता है ।

चैतन्य के संन्यास का यह आदर्श था । उन्होंने अपने जीवन का अंतिम भाग पुरी में इस रूप में बिताया ।

अंतिम दिन

कहा जाता है कि चैतन्य जीवन के अंतिम बारह वर्षों में गंभीर में रहे । गंभीर काशीश्वर मिश्र की भूमि पर मिट्टी का आवास था । उनके लौकिक जीवन का अंतिम भाग चरम भक्ति तल्लीनता से भरा था । उनके दिव्य-प्रेम की मति लगभग पागलपन की सीमा तक पहुंच गई । उनकी दशा को प्रेमोल्लास कहा जाने लगा । उनके जीवन का अंतिम भाग ऐसे आध्यात्मिक अनुभवों से भरा पड़ा है ।

फिर अकस्मात ही उनके लौकिक अस्तित्व का अंत आ गया था । केवल 48 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया । सारे स्रोत इस विषय पर सहमत हैं कि उनकी मृत्यु सन 1533 में हुई । चैतन्य के जीवन और काल पर अधिकारी विद्वान डा. बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार चैतन्य की मृत्यु-तिथि 9 जुलाई, 1533 है । लेकिन उनके जीवनचरितकारों में इस बात पर सहमति नहीं है कि यह दुखद घटना किस रूप में घटी । वास्तव में उनकी मृत्यु रहस्याच्छादित है और उनके बारे में कुछ दंतकथाएं प्रचलित हैं ।

अंत के विषय में भिन्न भिन्न कथाएं हैं । चैतन्य के अधिकांश मान्य और मानक जीवनचरित इस विषय पर मौन हैं । यह भी एक कारण है कि चैतन्य के निधन के बारे में इतनी बातें प्रचलित हैं ।

जन-विश्वास और अंध-विश्वास के कारण गुरु का एक अलौकिक चित्र बन गया था । उनके अनुसार चैतन्य के भौतिक शरीर में कोई भूतपरक पदार्थ नहीं था अतएव वह पुरी के मंदिर में भगवान जगन्नाथ की प्रतिमा में ही विलीन हो गया ।

इस संबंध में यह स्मरणीय है कि उनके जीवन के अंतिम दौर में चैतन्य को उड़ीसा के साधारण-जन और अगणित भक्त-गण देवता ही मानने लगे थे । जब भी वे जगन्नाथ मंदिर जाते थे तो अपने को छिपाए हुए जाते थे क्योंकि अगणित लोग उनका पदोदक पीने के लिए दौड़ पड़ते थे । यह भी पहले कहा जा चुका है कि उन्हें अपनी पूजा करवाने से सदा अरुचि रही अतएव उन्होंने पुरी मंदिर में सिंह-द्वार के उत्तर में एक द्वार के पीछे की एक जगह चुन रखी थी । यह जगह एक बड़े नीम वृक्ष से पूरी ढकी हुई थी । इसे लोग **बैद पशारा** कहते थे । लोग उन्हें देवता मानें और उनके चरणों से छुए जल को पिएं यह विचार उन्हें नहीं रुचता था । उन्होंने गोविंद को आदेश दे रखा था कि जब वे स्नान कर रहे हों तो कोई भी उनके निकट न आने पाये ।

उनके आदर्श आध्यात्मिक व्यक्तित्व के कारण उनके निधन के संबंध में अनेक प्रकार के काल्पनिक विश्वास प्रचलित हुए । जगन्नाथ में उनके विलीन होने की कथा का उल्लेख हो चुका है । एक और संस्करण के अनुसार गुरु गोपीनाथ की प्रतिमा में वह विलुप्त हुए थे ।

एक प्रचलित धारणा यह भी है कि चैतन्य धार्मिक भाव-विह्वल की समाधि में जाकर

पुरी के पास स्वयं समुद्र में डूब गये थे ।

इस कथा की पड़ताल करनी पड़ेगी क्योंकि इस पर अनेक लोगों का विश्वास है कृष्णदास कविराज ने अपने प्रसिद्ध जीवनचरित **चैतन्य चरितामृत** में एक ऐसी ही घटना का अंशत: वर्णन किया है ।

इस विषय पर कोई राय देने के पहले उनके जीवन के अंतिम भाग का वर्णन करना और **चैतन्य चरितामृत** में वर्णित इस विशेष घटना का भी विवरण जरूरी है ।

अपने जीवन के अंतिम भाग में चैतन्य अधिकांश समय 'दिव्योन्माद' की अवस्था में रहते थे । रात्रि में तो बार बार वे समाधि में चले जाते थे और धीरे धीरे उन्हें अपने पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया । समाधि के दौरान यदा-कदा वे अपनी शैय्या छोड़ देते और कोठरी के बाहर जाकर फुलवारी में श्रीकृष्ण भगवान को तीव्रता से ढूंढ़ा करते । इस तरह की घटनाएं अधिकतर रातों में घटा करती थीं और उनके निकट सहचारियों को यथासंभव सावधान रहना पड़ता था ।

एक रात उनके सहकारियों की आंख खुली उन्होंने पाया कि चैतन्य अपने कमरे में नहीं हैं । वे उनको बाहर ढूंढ़ने लगे । अनेक स्थानों में ढूंढ़ने के बाद चैतन्य जगन्नाथ मंदिर के सिंह-द्वार के पास बेसुध अवस्था में पड़े मिले । कुछ समय बाद उन्हें होश आया ।

चैतन्य को होश में आने के बाद याद ही नहीं था कि वे किस तरह और कब वहां पहुंचे । सारे समय वे एक प्रकार की समाधि में थे ।

समकालीन विवरणों से यह भी पता चलता है कि एक बार वे जगन्नाथ वल्लभ नाम से प्रसिद्ध फुलवारी में नौ दिन रह गये ।

चैतन्य उन दिनों नरेंद्र सरोवर और इन्द्रद्युम्न सरोवर नामक तालाबों में प्राय: स्नान किया करते थे । वे कुछ समय के लिए पुरी में **गिमदिचा** सदन में रहे ।

वे **श्रीमद्भागवत** में श्रीकृष्ण से बिछुड़ गयी गोपियों के विरह गीत सुनकर भाव-विह्वल होकर उन्मत्त हो जाते थे ।

उन दिनों स्वरूप दामोदर और राया रामानंद सदैव उनके साथ रहा करते थे । चैतन्य इन श्लोकों की व्याख्या समझा रहे थे कि समाधि में लीन हो गये । इस अवस्था में उनके निकट अनुयायियों ने गुरु की रात में देखभाल करने के लिए शंकर नामक ब्राह्मण को नियुक्त किया ताकि चैतन्य अर्द्ध-जागृत अवस्था में अपने कमरे से बाहर न निकल जायें ।

लेकिन इस सतर्कता के बावजूद चैतन्य एक रात समाधि की अवस्था में कमरे से बाहर निकल गये और उसी अवस्था में समुद्र तट पर पहुंच गये । विस्तीर्ण मुक्त सागर पर दृष्टि पड़ने पर उनको जल के गहरे नील वर्ण के प्रति बहुत आकर्षण हुआ और वे उसी विह्वल अवस्था में समुद्र में कूद पड़े । वे इतने प्रसन्न थे कि जैसे भगवान श्रीकृष्ण

का आलिंगन कर रहे हों या यमुना के पावन जल में गोते लगा रहे हों जो कि उनके श्याम को बहुत पसंद था ।

इसी समय उन्हें एक मछुआरे ने देखा जो रोजाना रात बीतते समय समुद्र में जाल डालकर मछलियां पकड़ा करता था । उसने चैतन्य को समय रहते पकड़ लिया और तट पर ले आया ।

इसी समय स्वरूप दामोदर, रामानंद राया और अनेक अन्य भक्त समुद्र तट पर आये । ये लोग सड़कों पर जगन्नाथ मंदिर में चैतन्य को ढूंढ़ते आ रहे थे लेकिन चैतन्य कहीं नहीं मिले । राजा प्रताप रूद्र को भी चैतन्य के खोने की सूचना मिल गयी थी और वह भी चिंतित थे ।

अंतत: स्वरूप दामोदर और राया रामानंद ने चैतन्य को समुद्र तट पर बेसुध अवस्था में पड़ा हुआ पाया । उन्हें मछुआरा वहां लिटा गया था । गुरु को होश में लाने के लिए स्वरूप दामोदर और अन्य लोग उनके कानों में श्रीकृष्ण नाम का जप करने लगे ।

कुछ समय बाद चैतन्य को होश आया लेकिन वे इतने पीले, दुर्बल और श्लथ थे कि उनके शिष्यों को लगा जैसे उनका अंत निकट आ गया हो और वे अब इस कष्ट को बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे ।

लेकिन वे धीरे धीरे सामान्य अवस्था में आ गये । सब लोगों को राहत मिली ।

कृष्णदास कविराज ने इसके बाद चैतन्य द्वारा डूबने की घटना के उपरांत की गयी स्मरणीय सलाह का विवरण दिया है । उन्होंने रामानंद राया को व्यावहारिक सलाह के रूप में एक आध्यात्मिक सूक्ति अभिव्यक्त की । चैतन्य ने कहा — "नेक बनो और अपने को घास से भी विनम्र मानो । तरु की तरह धैर्यवान बनो । अगर कोई तरु को काटता है तो उसे कोई शिकायत नहीं होती । वह सूख जाता है लेकिन दूसरों से एक बूंद जल नहीं मांगता । जिसे भी जरूरत हो उसे यह मुक्त-भाव से अपना फलों और फूलों का कोष दे डालता है । बारिश में और धूप में पड़े रहते हुए अपने भंडार को यह दूसरों को ही देता रहता है । वैष्णव में लेशमात्र भी अहंकार नहीं होना चाहिए । उसे मानना चाहिए कि हर आत्मा में कृष्ण का वास है । अत: स्वयं सम्मान की इच्छा किये बिना हर एक का सम्मान करना चाहिए । जो ऐसा बनकर कृष्ण का नाम लेगा उसे कृष्ण-प्रेम का पुरस्कार मिलेगा ।"

चैतन्य यह कह ही रहे थे कि उनकी आत्मा विनयानुभूति से सराबोर हो गयी । फिर वे कृष्ण की प्रार्थना करने लगे — "हे कृष्ण मुझे विनयी बनाओ और मेरी आत्मा में भक्ति भरो ।"

उन्होंने तदुपरांत **पद्यावली** के एक श्लोक का उल्लेख करते हुए कहा — "मुझे न तो अनुयायी चाहिए, न धन, न विद्या, न ही काव्य-शक्ति । मेरी आत्मा में केवल थोड़ी-सी अपनी भक्ति भर दो ।"

चैतन्य सेवक भाव में आकर बार बार प्रार्थना करते – "मेरी अत्यंत तुच्छ सेवाएं स्वीकार कर लो। और मजदूरी में मुझे अपनी थोड़ी-सी भक्ति दे दो..."

फिर उन्होंने कहा – "कृष्ण के बिना जगत सूना हो गया है। अगर वह मुझे दुख भी दें तो मेरे लिये सुख होगा। जिस तरह अनुरक्त पत्नी अपनी पति की हर भेंट दुनिया की दृष्टि में बुरी हो या अच्छी स्वीकार करती है उसी तरह कृष्ण मुझे जो भी दें मैं उसे आनंद मानकर ग्रहण करूंगा। अपने लिए मुझे कुछ भी नहीं चाहिए ! वह जो भी दे मेरे लिए आनंद है। दुनिया की दृष्टि में वह चाहे दुख हो या सुख।"

इन शब्दों को कहते समय चैतन्य की आंखें अश्रुपूर्ण हो चली थीं। उनके शरीर में कंपन होने लगा फिर वे बेसुध होकर जमीन पर गिर पड़े। कृष्णदास कविराज-कृत **चैतन्य चरितामृत** इसी स्थल पर समाप्त हो जाता है। लेखक ने गुरु की मृत्यु का विवरण नहीं दिया है। वृंदावनदास-कृत **चैतन्य भागवत** में भी इस विषय में कुछ नहीं है। मुरारी-कृत **चैतन्य चरित** और कवि कर्णपुर द्वारा लिखे गये जीवनचरित में भी चैतन्य की मृत्यु कैसे हुई इसका विवरण नहीं है।

चैतन्य चरितामृत में दिये गये विवरण को आगे बढ़ाकर अनेक लोग यह मानते हैं कि चैतन्य बेसुध होकर समुद्र में गिर पड़े और इससे उनकी इहलीला समाप्त हो गयी। उनका कहना है कि मछुआरे द्वारा चैतन्य के निकाले जाने की कथा बाद में जोड़ी गयी है और वस्तुतः वे बीच समुद्र में डूब गये थे।

कृष्णदास कविराज के कथनानुसार चैतन्य के समुद्र में डूबने के विवरण को विश्वसनीय माना जा सकता है। उन्होंने इसका विशेष उल्लेख किया है कि एक मछुआरे ने चैतन्य को बाहर निकाला और कुछ समय बाद गुरु होश में आ गये। यहां तक कि बाहर निकालने के बाद हुई घटनाओं और उनके कथनों का भी विवरण **चैतन्य चरितामृत** में उल्लिखित है।

चैतन्य के जगन्नाथ या गोपीनाथ की मूर्ति में विलीन होने की लोकप्रचलित मान्यता और अंध-विश्वास का कोई आधार नहीं है। चैतन्य के अंत के अस्पष्ट विषय में जयानंद द्वारा रचित **चैतन्य मंगल** में निश्चित सूचना है। विद्वान इस जीवनचरित को मान्य नहीं करते और बंगाल के नैष्ठिक वैष्णवों द्वारा भी यह मान्य नहीं है किंतु इसमें गुरु की मृत्यु के विषय में तथ्य का विवरण प्रतीत होता है।

जयानंद की इस पुस्तक में चैतन्य के निधन का एक अत्यंत मानवीय कारण उल्लिखित है। अधिकांश आधुनिक शोधकर्ताओं ने इस बात को स्वीकार किया है। इस संबंध में यह भी स्मरणीय है कि चूंकि जयानंद की इस कृति को वैष्णव अधिकारी मान्य नहीं करते थे इसलिए लेखक को सामग्री चयन में अपने विवेक के प्रयोग की छूट थी और अपनी कथा लिखने में कोई बाधा नहीं थी। दूसरी ओर पूर्णतया नैष्ठिक साहित्य को इस तरह की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी।

जयानंद **चैतन्य मंगल** में यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि रथ-यात्रा उत्सव के समय जगन्नाथ की मूर्ति के सामने नृत्य करते हुए चैतन्य के बाएं पांव में चोट लग गई। वे भाव-विह्वल होकर नृत्य कर रहे थे कि सड़क पर पड़ी एक ईंट से उनके पांव में घाव हो गया। इस घाव के कारण उन्हें ज्वर आने लगा। कुछ ही दिनों में वे इसके शिकार हो गये। डा. बिमान बिहारी मजूमदार ने समकालीन कृतियों की जांच-पड़ताल करके चैतन्य की निधन-तिथि 9 जुलाई, 1533 निश्चित की है। अकाल मृत्यु के समय चैतन्य की आयु 48 वर्ष थी।

प्रो. दिनेशचंद्र सेन ने मुख्यत: जयानंद के **चैतन्य मंगल** और लोचनदास की इसी नाम की कृति के आधार पर चैतन्य के निधन और बाद में उनके शरीर के अंतिम संस्कार के विषय में कुछ प्रमुख बातों का विवरण दिया है। प्रो. सेन द्वारा संकलित घटनाएं इस प्रकार हैं :

पुरी में रथ-यात्रा के समय भाव-विह्वलता में नृत्य करते हुए वे संयोगवश गिर पड़े और उनके पांव में भी गंभीर घाव हो गया। उन्हें वहां से तुरंत गुंडिचा बाग ले जाया गया। यहां उन्हें तीव्र ज्वर आ गया। दोपहर में तीन बजे के लगभग उनकी मृत्यु हो गयी।

गुंडिचा आवास के द्वार उस दिन तीन बजे के बाद नहीं खुले जबकि रोज द्वार खोल दिये जाते थे। बंद दरवाजों के भीतर पुरोहित-गण चैतन्य के शरीर को समाधि दिये जाने की व्यवस्था कर रहे थे।

गुंडिचा भवन के हाते में ही, अधिक संभव है राजा प्रताप रुद्र की सहमति से समाधि देने की बात सोची जा रही थी। एक गुप्त द्वार से ढेरों फूल भवन के भीतर लाये गये।

इस बीच मंदिर के बंद मुख्य द्वार पर भीड़ इकट्ठी हो गयी थी और चैतन्य के बारे में पूछताछ कर रही थी। इसमें श्रीवास, मुरारीदत्त, गौरीदास और अन्य चैतन्य के कुछ निष्ठावान अनुयायी भी थे। इन्हें मंदिर के भीतर नहीं जाने दिया गया था।

समाधि मंदिर के भीतर ही मूर्ति-कक्ष के बगल के बड़े मंडप के एक कोने में दिये जाने की व्यवस्था की गयी थी। इस उद्देश्य से कुछ पत्थर निकाल लिये गये थे ताकि शरीर को रखने के लिए स्थान किया जा सके। वहां शरीर रखने के बाद पत्थरों को फिर से लगा दिया गया ताकि समाधि दिये जाने का कोई चिह्न न रह जाये। ये सारे कार्य पूर्ण करने में कई घंटे लग गये।

फिर रात में आठ बजे उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा कर रही भीड़ के लिए गुंडिचा मंदिर के मुख्य द्वार खोल दिये गये और घोषित किया गया कि चैतन्य अब इस दुनिया में नहीं रहे।

गुंडिचा भगवान के मूर्ति-कक्ष के निकट मंडप के कोने में चैतन्य के पाषाण में उभरे हुए पद-चिह्न हैं। प्रो. दिनेशचंद्र सेन ने यह माना है कि इसी चिह्न के नीचे शरीर रखा

गया होगा । उनके अनुसार गुंडिचा मंदिर में उस स्थल पर उनके पद-चिह्नों का और कोई कारण नहीं हो सकता क्योंकि चैतन्य के प्रिय स्थान जगन्नाथ मंदिर और गोपीनाथ मंदिर थे, गुंडिचा मंदिर नहीं । प्रो. सेन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह उनका अनुमान-मात्र ही है और इस विषय में वह कुछ नहीं कह सकते ।

चैतन्य के निधन के बारे में एक और भयानक दंतकथा है, उड़ीसा के राजा पर चैतन्य का व्यक्तिगत प्रभाव बहुत बढ़ते देखकर कतिपय पुरोहितों ने गुंडिचा मंदिर के भीतर उनकी हत्या करवा दी । किंतु जैसा प्रो. दिनेशचंद्र सेन ने संकेत दिया है राजा प्रताप रुद्र की राजधानी में ऐसा नहीं हो सकता था । राजा प्रताप रुद्र चैतन्य को सशरीर भगवान मानते थे और उनकी सेवा के लिए कोई भी त्याग करने के लिए तत्पर रहते थे । चैतन्य के निधन के बारे में प्रचलित सारे विचारों के पुष्टिकर और विरुद्ध प्रमाणों पर विचार करने के बाद जयानंद **चैतन्य मंगल** में लिखित और प्रो. दिनेशचंद्र सेन द्वारा विवेचित विवरण में सच्चाई प्रतीत होती है ।

धर्म प्रचार

यह स्मरणीय है कि चैतन्य अपने मत को स्वीकार करने वाले अनुयायियों के सक्रिय संगठनकर्ता नहीं थे । उनके आदर्श संन्यासी जीवन और धार्मिक व्यक्तित्व ने उनके अग्रणी शिष्यों के लिए एक प्रेरक भक्ति आदर्श प्रस्तुत किया । उन्होंने ही इस नव वैष्णव आंदोलन का विकास किया । उनके निकट शिष्यों ने इसकी उपासना की परिभाषा की, इसके सिद्धांतों तथा आधारों को भी रीतिबद्ध किया ।

उनके अनुयायियों में से दो प्रमुख संप्रदायों या केंद्रों का विकास हुआ । इनमें से एक उत्तर प्रदेश में वृंदावन में था और दूसरा खास बंगाल में नवद्वीप में । उड़ीसा में पुरी में भी एक केंद्र था । चैतन्य के वृंदावनवासी शिष्यों ने गौडीय वैष्णव मत या चैतन्य नाम से अभिज्ञात संपूर्ण सिद्धांत प्रणाली की परिभाषा और इसके तत्व चितन को निबद्ध किया ।

यहां यह उल्लेख आवश्यक है कि अन्य वैष्णव संप्रदायों के प्रवर्त्तकों की तरह चैतन्य ने कभी अपने विचारों को लिपिबद्ध नहीं किया और न कोई धर्मग्रंथ लिखा । उनके महत्वपूर्ण आध्यात्मिक व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर संप्रदाय उन्हीं के चहुं ओर बना और बाद में उनके प्रधान शिष्यों ने उसका विकास किया । लोग उनके प्रयत्नों से नहीं उनके आदर्श धार्मिक जीवन के उदाहरण से उनके मत में आए । जैसे कवि कर्णपुर ने लिखा है कि श्रीचैतन्य की भक्ति को देखकर ही लोग किसी दीक्षा के बिना ही उनके भक्त बन जाते थे । उनके आध्यात्मिक सत्य-बोध से लोगों पर मोहक जादू-सा पड़ता था । वे भक्तिपरक चरम भावोन्मेष में विह्वल हो जाते थे और लोग इस उत्कट भक्ति के सबल आकर्षण से बहुत गंभीर रूप में प्रभावित होते थे । उनके असीम धार्मिक

उत्साह से अधिक सक्षम पुरुष भी मुग्ध और प्रेरित हो जाते थे। जैसा कि वासुदेव सार्वभौम के मतांतरण, राजा प्रताप रुद्र के समर्पण और अन्यों के मतांतरण से प्रकट है।

चैतन्य के आध्यात्मिक अनुभव और प्रधान अनुयायियों और शिष्यों से व्यक्तिगत संपर्क इस वैष्णव आंदोलन की वाहक शक्ति बना रहा। उनके जीवन और व्यक्तित्व के अद्वितीय उदाहरण से प्रेरित होकर उनके अग्रणी शिष्यों ने आंदोलन को पोषित और प्रसारित किया। गुरु के निधन के बाद भी यह प्रक्रिया जारी रही। उन्होंने वैष्णवों के अनुसरण के लिए अपने ही जीवन के उदाहरण को मानक बना दिया था। राधा-कृष्ण उपासना के उनके बोध से उनके मत और आंदोलन को गति मिली और उनके उल्लेखनीय शिष्यों के निर्देशन में या गौडीय वैष्णव मत के रूप में संगठित हो गया।

समाज के विद्वान और निष्ठावान लोग जो उनके भक्त बन गये थे संप्रदाय के संगठनकर्ता बन गये। चैतन्य ने उन्हें स्वार्थहीन भक्ति कार्य करने के लिए प्रेरित किया था। उनकी सरल और चित्ताकर्षक उपासना धारणाएं और उनकी मोक्ष दायिनी शक्ति से उनके शिष्य, मत और आंदोलन के व्यावहारिक और सैद्धांतिक पक्षों को विकसित करने के लिए उत्साहित हुए। संक्षेप में चैतन्य का अपने संप्रदाय और उपासना से यही संबंध था।

3

वृंदावन के छह गोस्वामी

चैतन्य की वृंदावन की अनुयायी मंडली को उनके आंदोलन के आचारगत और सैद्धांतिक पक्षों को विकसित करने का उद्देश्य पूर्ण श्रेय दिया जाता है। इस वृंदावन मंडली के छह अग्रणी लोग बाद में वृंदावन के छह गोस्वामियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम थे रूप, सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव। इसमें से पहले पांचों सीधे चैतन्य के शिष्य थे। रघुनाथ भट्ट के अतिरिक्त अन्य सभी ने वैष्णव पंथ के विभिन्न पक्षों पर लेखनी चलाई और संस्कृत या दो भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

आचार्य के निधन के कुछ वर्षों के भीतर गोस्वामियों द्वारा अपने समग्र ग्रंथों के लेखन का कार्य पूरा हो गया था और वे सभी प्रधानत: चैतन्य के व्यक्तिगत उदाहरण और शिक्षा से प्रभावित थे।

चैतन्य ने दोनों भाई रूप और सनातन पर तत्व-विद्या और रसशास्त्र की रचना का भार सौंपा था। इनके विद्वान भातृज जीव ने इस कार्य में उनकी सहायता की। भक्त संन्यासी के अतिरिक्त ये सभी लोग तत्व-शास्त्री, कवि और श्रेष्ठ साहित्यिक भी थे। ये तीनों मत के अधिकारी विद्वान और उपासना गुरु माने जाते थे। अपनी अटूट भक्ति, विद्वत्ता, त्याग और आदर्श संत-स्वभाव के कारण संप्रदाय के अनुयायी इनका सर्वाधिक आदर करते रहे हैं।

गोपाल भट्ट इन तीनों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। वह बंगाली नहीं, दक्षिण भारतीय ब्राह्मण थे। उन्होंने एक वृहत ग्रंथ में मुख्यत: वैष्णव मत के सामाजिक और धार्मिक आचारों को निबद्ध किया। उपासना रीतियों के संबंध में उनका ग्रंथ सर्वोच्च प्रमाण माना जाता है और बंगाल के वैष्णव इनका भी समान आदर करते हैं।

गुरु के निर्देश पर गौडीय वैष्णव मत के इन बौद्धिक नेताओं और चैतन्य के एक अन्य निष्ठावान अनुयायी लोकनाथ ने आधुनिक वृंदावन का जीर्णोद्धार और निर्माण का कार्य किया। वृंदावन का न केवल जीर्णोद्धार हुआ बल्कि इनके धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यों, पूर्ण त्याग, गहन विद्वता, संत स्वभाव और भक्ति के परिणास्वरूप संप्रदाय के

मुख्य केंद्र के रूप में विकसित हुआ। गौडीय वैष्णव मत का सिद्धांत वृंदावन के छह गोस्वामियों ने ही निर्धारित किया। बंगाल के वैष्णव संप्रदाय के तत्व-चिंतन दर्शन, उपासना-रीति और रस-शास्त्र की पुस्तकों की रचना उनके ही प्रयत्नों का परिणाम है।

आधुनिक वृंदावन उनके ही आंखों के देखते और उनके ही निर्देशन में विकसित हुआ। श्रीकृष्ण की स्मृति और संबंधों से पावन हुई इस नगरी के पवित्र स्थानों का उन्होंने जीर्णोद्धार किया। वृंदावन को सुंदर बनाने और इसके गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए उन्होंने अपने धनी अनुयायियों को यहां मंदिर, स्नान घाट, उपवन आदि बनवाने के लिए प्रेरित किया। अपने गुरु सनातन गोस्वामी की राय से राजा मानसिह ने गोविंदजी का विशाल सुंदर मंदिर बनवाया। छह गोस्वामियों के ही सर्वव्यापी प्रभाव के कारण पवित्र वृंदावन भारत के अन्य वैष्णव संप्रदायों की अपेक्षा बंगाल के या गौडीय वैष्णव संप्रदाय से ज्यादा संबद्ध माना जाने लगा।

गौडीय वैष्णव मत के इतिहास में वृंदावन शाखा अर्थात वृंदावन के छह गोस्वामियों का अनुपम स्थान है। उन्होंने संस्कृत भाषा के माध्यम से समग्र भारतवर्ष में गौडीय वैष्णव मत के सिद्धांतों का प्रचार किया। उन्होंने सर्वमान्य श्रीकृष्ण को सामने रखकर चैतन्य मत का प्रचार किया। वृंदावन के गोस्वामी चैतन्य को एक उद्देश्य प्राप्ति का साधन मानते थे जबकि बंगाल शाखा में चैतन्य को ही उद्देश्य माना जाता था। चैतन्य की बंगाल की अनुयायी मंडली किस प्रकार से गुरु के निधन के बाद वैष्णव गोस्वामियों से अलग शाखा में विकसित हुई इसका विवरण एक अन्य अध्याय का विषय है।

शास्त्रों और वृंदावन के गोस्वामियों के अनुमान के अनुसार पूजा श्रीकृष्ण की होनी चाहिए और इस उद्देश्य से चैतन्य के विचार आदर्श रहेंगे।

यहां वृंदावन शाखा की सर्वोच्च स्थिति को पुनः बल देना आवश्यक है। छह गोस्वामी गौडीय वैष्णव संप्रदाय के मान्य बौद्धिक नेता थे। वे सामान्यतया बंगाल के वैष्णव संप्रदाय के मान्य परामर्शदाता थे। बंगाल में रचित होने वाले ग्रंथ उनकी सहमति प्राप्त करने के लिए वृंदावन भेजे जाते थे। जिन ग्रंथों को उनकी सहमति नहीं मिलती थी उन्हें वैष्णव अधिकारी विद्वान मान्य नहीं करते थे और संप्रदाय के सदस्यों में उनका वितरण नहीं हो सकता था। बंगाल के लेखक उनके सुझावों को स्वीकार भी करते थे। यहां एक उदाहरण दिया जा सकता है। वृंदावनदास एक गुरु के प्रसिद्ध जीवनचरित को गोस्वामियों की सहमति के लिए वृंदावन भेजा गया। वे पांडुलिपि को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। इसका शीर्षक लेखक ने **चैतन्य मंगल** रखा था। उन्होंने पुस्तक से तो सहमति व्यक्त की लेकिन शीर्षक बदलकर **चैतन्य भागवत** करना चाहा। उन्हें **श्रीकृष्ण भागवत** से इसमें समानता दिखी थी। अतएव वृंदावनदास का **चैतन्य मंगल, चैतन्य भागवत** के नाम से जाना जाने लगा।

छहों पावन और विद्वान गोस्वामी संप्रदाय के नेता माने जाते थे और उनकी

साहित्यिक कृतियां गौडीय वैष्णव विश्वासों का आधार थीं । उनकी रचनाओं की सीमा और बहुमुखिता व्यापक और उल्लेखनीय है । प्राय: उनकी साहित्यिक कृतियों को सामूहिक रूप में ही वृंदावन समझा जाता था । लेकिन लेखक के विशेष सम्मान और योग्यता के अनुसार उनकी निजी कृतियों में कुछ विशेषताएं रहा करती थीं ।

इस प्रकार सनातन में मुख्यत: तत्व-विद्या पर या उनकी व्याख्या से संबंधित ग्रंथ लिखा क्योंकि उनका स्वभाव मुख्यतया एक विद्वान से अधिक एक भक्त का था । इसी प्रकार गोपाल भट्ट की मनोरचना अन्य गोस्वामियों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक थी इसलिए उन्होंने अपने ऊपर पूजा, यज्ञ और उपासनात्मक आचारों के विरुद्ध रीति-बद्ध करने का भार संभाला रघुनंदनदास कवि ने । छंद और गद्य दोनों में उन्होंने कृष्ण-लीला का वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है । इसी तरह रूप भक्त भी थे और विद्वान भी । उन्होंने भक्ति-रस, नाटक, काव्य, संग्रह आदि में मन लगाया ।

दूसरी ओर जीव गोस्वामी की सर्वतोमुखी प्रतिभा वैष्णव शास्त्र की सभी शाखाओं में अभिव्यक्त हुई । लेकिन उनके जन्मजात दार्शनिक झुकाव के कारण उनका विशेष ध्यान रहस्यात्मक तत्व-विद्या, सैद्धांतिकी की व्याख्या में लगा । जैसे पहले कहा जा चुका है केवल रघुनाथ भट्ट ने कोई पुस्तक नहीं लिखी । वृंदावन के गोस्वामियों ने वैष्णव शास्त्र के समग्र क्षेत्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया और गौडीय वैष्णव मत के धार्मिक और दार्शनिक आदर्श ग्रंथों की रचना की ।

सामान्यतया गौडीय वैष्णव मत के इतिहास में वृंदावन के छहों गोस्वामियों को समूह के रूप में ही उनके योगदान के लिए स्मरण किया जाता है । संप्रदाय की तत्व-विद्या, आचार और रस-शास्त्र को समझने के लिए उनकी समग्र रचनाओं पर विचार किया जाता है । किंतु यहां पर उनके जीवन और गतिविधियों की एक झलक लेने के लिए उनका अलग अलग वर्णन किया जायेगा ।

(1) रूप गोस्वामी

सनातन के छोटे भाई रूप कवि, अलंकार शास्त्री बहुश्रुत और कहने की आवश्यकता नहीं निष्ठावान संन्यासी थे । चैतन्य के निकट अनुयायियों में रूप गोस्वामी ने ही पहले भक्ति के धार्मिक भाव को रीति-बद्ध किया ।

भक्ति रसामृत सिंधु और **उज्ज्वल नीलमणि** नामक दो आधिकारिक संस्कृत ग्रंथ लिखकर भक्ति की धार्मिक भावना की पांडित्यपूर्ण व्याख्या की । इन दोनों पुस्तकों में भक्ति रस-शास्त्र आ गया है ।

जब वे पहली बार अपने जन्म-स्थान गौड की राजधानी के निकट रामकेली में चैतन्य से मिले, रूप बंगाल के शासक हुसेन शाह के दरबार में उच्च पदाधिकारी थे । उस समय वे दाविर 'खास' (निजी सचिव) के नाम से विख्यात थे । संभव है मुसलमान

दरबार में उनकी यही सरकारी पदवी रही हो। चैतन्य ने उन्हें रूप नाम दिया जिस नाम से वे बाद में प्रसिद्ध हुए।

वे और उनके बड़े भाई सनातन चैतन्य से मिलने के पहले ही वैष्णव मत की ओर आकृष्ट थे। नवद्वीप की वैष्णव मंडली से उनका संपर्क था और उन्होंने रामकेलि के निकट कुछ कर्नाटक प्रांतीय ब्राह्मणों को बसाया भी था। वे स्वयं भी कर्नाटक ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज कर्नाटक से बंगाल आये थे। दोनों भाइयों ने अपने पैतृक धार्मिक मत को और 'कृष्ण-लीला' में अपनी रुचि को बनाए रखा।

चैतन्य से मिलने के बहुत पहले ही रूप ने **दानकेली कौमुदी** और **हंसदूत** पुस्तकें लिख ली थीं जिनसे उनके धार्मिक झुकाव का पता चलता है। रामकेलि में चैतन्य के मोहक आध्यात्मिक व्यक्तित्व से प्रथम बार संपर्क में आने की उनकी मानसिक भूमि तैयार थी।

चैतन्य से मिलने पर उन्होंने अपने को आध्यात्मिक निर्देश के लिए गुरु के हवाले कर दिया और अपना घर-बार छोड़ने का निश्चय किया।

कुछ समय बाद रूप ने सुल्तान हुसेन शाह के दरबार की नौकरी छोड़ दी। फिर उन्होंने अपने छोटे भाई अनुपम (उर्फ़ वल्लभ जीव के पिता) के साथ घर-बार भी छोड़ दिया। उस समय चैतन्य वृंदावन की तीर्थ-यात्रा से लौटते हुए प्रयाग में रुके हुए थे। अपने भाई अनुपम के साथ रूप गुरु के पास पहुंच गये। चैतन्य ने रूप को जाकर वृंदावन में रहने और उस पावन नगरी का जीर्णोद्धार करने की राय दी। रूप गुरु के साथ वाराणसी जाना चाहते थे किंतु उनके निर्देश के अनुसार दस दिन उनके साथ रहने के बाद वे वृंदावन चले गये। रूप कुछ समय तक वृंदावन में रहे। फिर चैतन्य से मिलने पुरी के लिए रवाना हुए। उनके साथ बंगाल लौट रहे अनुपम भी थे। रास्ते में ही अनुपम बंगाल में गंगा के तट पर दिवंगत हो गये। रूप पुरी पहुंचे और चैतन्य के साथ दस मास रहे। तदुपरांत वृंदावन वापस आ गये पूर्णतः वहीं बस गये। वे मृत्यु तक अपने बड़े भाई सनातन के साथ अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए पावन और विद्या-व्यसनी जीवन व्यतीत करते रहे।

रूप गोस्वामी द्वारा लिखित ग्रंथ इस प्रकार है : **उद्धव संदेश, विदग्ध माधव, ललित माधव, हंसदूत, भक्ति-रसामृत-सिद्ध, दानकेलि कौमुदी, उज्ज्वल नीलमणि, मथुरा महिमा, नाटक चंद्रिका, पद्यावली** (संचयन), **भागवतामृत,** और विविध **स्तव** आदि।

(2) सनातन गोस्वामी

सनातन तीनों भाइयों में सबसे बड़े थे। रूप मझले थे। वे भी सुल्तान हुसेन शाह के दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। उनका नाम भी 'साकेर मलिक' पड़ गया था जो उन्हें

मिली सरकारी पदवी हो सकती है। सनातन नाम गुरु प्रदत्त था। वह भी रूप के साथ रामकेलि गांव में ही रह रहे थे जब चैतन्य से दोनों की भेंट हुई।

अपने आरंभिक जीवन में सनातन ने पुरी में चैतन्य के प्रशंसक वासुदेव सार्वभौम के छोटे भाई नवद्वीप के पंडित विद्या वाचस्पति से संस्कृत का अध्ययन किया था। बाद में उन्होंने फारसी और अरबी का भी अध्ययन किया। अपने भाई रूप की तरह सनातन ने भी अपने को चैतन्य को समर्पित कर दिया और लौकिक जीवन के बंधनों से मुक्ति पाने की इच्छा प्रकट की, गुरु ने कहा — 'कृष्ण तुम्हारी कामना पूरी करेंगे।' फिर उन्होंने सनातन से कहा कि तुम्हारा लक्ष्य होगा वृंदावन के प्राचीन गौरव को पुनर्स्थापित करना।

इसके उपरांत चैतन्य पुरी लौट आये। पहले अनुपम के साथ रूप ने संन्यास जीवन ग्रहण करने के लिए गृह-त्याग किया। चैतन्य के संपर्क में आने के बाद सनातन का चिंतन भी उसी दिशा में चल रहा था अपने सरकारी कार्य में अब उनका मन नहीं लग रहा था। धीरे धीरे उन्होंने दरबार जाना भी छोड़ दिया।

सुल्तान को आशंका हुई अपने भाई रूप की तरह सनातन भी अपना कार्य छोड़ देंगे। अत: उसने सनातन को बुलवा भेजा और एक शत्रु के विरुद्ध अभियान में शामिल होने के लिए कहा।

कहा जाता है कि सनातन ने बेहिचक उत्तर दिया — "हो सकता है आप कुछ मंदिरों को विनष्ट करें और हिंदू भावनाओं को दुख पहुंचाएं। कृपया ऐसी गतिविधियों में मेरे सहयोग की मांग न करें। आपके अनेक मुसलमान वज़ीर हैं, उनमें से कुछ को अपने साथ ले जाइए।"

यह उत्तर सुनकर हुसेन शाह क्रुद्ध हो गया। लेकिन उसने किसी अभियान में शामिल होने के लिए उन पर दबाव नहीं डाला।

किंतु सनातन ने दरबार में अपने कार्य को पुन: नहीं संभाला। तब हुसेन शाह ने उनकी गिरफ्तारी का आदेश दिया। सनातन गिरफ्तार कर लिये गये और हुसेन शाह किसी शत्रु के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने के लिए चला गया।

इस बीच सनातन के संबंधियों ने उनको मुक्त कराने के लिए कारागार के अधिकारी को खूब रिश्वत दी। तदुपरांत सनातन ने संन्यासी के वेश में गुप्त रूप से गौड छोड़ दिया।

वे वाराणसी जाकर चैतन्य से मिले। फिर गुरु की राय मानकर वे वृंदावन चले गये जहां रूप भी उन दिनों रह रहे थे।

बाद में सनातन थोड़े समय के लिए पुरी आये थे और फिर रूप के साथ वृंदावन में ही बसने के लिए वापस चले गये।

रूप की तरह सनातन भी चैतन्य से मिलने के पहले से ही शास्त्र-विद्या में पारंगत थे और वैष्णव मत की ओर उनका रुझान था। अत: चैतन्य ने दोनों भाइयों को तत्व-विद्या

और रस-शास्त्र की रचना का काम सौंपा ।

रूप की तरह सनातन भी महाविद्वान, तत्व-शास्त्री, कवि और निष्ठावान संन्यासी थे । उन्होंने आदर्श और निःस्वार्थ भक्ति से कार्य किया । संप्रदाय के अनुयायी रूप के साथ उनका भी अत्यधिक आदर करते थे ।

वृंदावन की पवित्र नगरी के जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण में सनातन का सर्वाधिक योगदान है । उन्होंने अपने कुछ धनी प्रशंसकों को वृंदावन में मंदिर आदि निर्माण कराने के लिए प्रेरित किया । राजा मानसिंह ने सनातन और रूप के ही इंगित पर भव्य गोविंदजी का मंदिर बनवाया । सनातन के प्रभाव से रामदास कपूरी नायक धनी सौदागर ने मदनमोहन मंदिर का निर्माण कराया । रूप और सनातन द्वारा प्रेरित समृद्ध पुरुषों ने केवल मंदिर ही नहीं स्नान घाट, उपवन और अन्य भवनों का निर्माण कराया । राजपूताना के अनेक शासक सनातन के बड़े प्रशंसक थे ।

रूप की तरह वह भी वृंदावन में केवल भिक्षा पर यापन करते हुए हर प्रकार के मौलिक सुखों को त्याग कर आदर्श संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे । ये दोनों विख्यात भाई वृंदावन की वैष्णव मंडली के मुख्य प्रेरणा केंद्र और मान्य नेता थे । अपने भतीजे जीव गोस्वामी के अनुसार सनातन द्वारा रचित चार रचनाएं इस प्रकार हैं : **भागवतामृत** (दो भागों में), **हरि-भक्ति-विलास, लीला-स्तव** और **वैश्ववतोष्णी** ।

(3) रघुनाथदास गोस्वामी

वृंदावन के छह गोस्वामियों में मात्र रघुनाथदास ही अब्राह्मण थे । किंतु इस कारण उन्हें सम्मान कम नहीं मिला । वैष्णव मत के क्षितिज में उनका जीवन भी एक और प्रभावान नक्षत्र की तरह देदीप्यमान था । उन्होंने स्वेच्छा से अपना संपूर्ण धन, सुख और सांसारिक वैभवों का त्याग कर कष्टों और त्यागों से भरा हुआ संन्यास का मार्ग अपनाया । वे एक बड़े जमींदार सप्तग्राम के गोवर्धन के पुत्र थे, इन्हें जमींदारी की वार्षिक आय बारह लाख रुपये सालाना थी ।

लेकिन बाल्यावस्था से ही रघुनाथ में गंभीर धार्मिक रुझान दृष्टिगोचर होने लगी थी । जब रामकेलि जाते हुए चैतन्य शांतिपुर में रुके तब रघुनाथ उनसे मिले । रघुनाथ उस समय 16 वर्ष के बालक थे । रघुनाथ ने गुरु के संप्रदाय में दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की । लेकिन चैतन्य ने यह अस्वीकार किया और उन्हें राय दी — "असमय में ही इस आश्रम में दीक्षित मत हो । अभी अपने परिवार में वापस चले जाओ और निष्काम भाव से अपने सारे कर्तव्य पूरे करो । संभव है कि तुममें अभी लक्षित होने वाली त्याग की वृत्ति सच्ची न हो । इस जीवन के योग्य बनने के लिए पहले तुम अपने कर्तव्यों को पूर्ण करो ।"

रघुनाथ तदनुसार वापस अपने घर चले गये । गोवर्द्धन ने अपने पुत्र की मनोदशा

को देखकर अपने पुत्र का एक अत्यंत सुंदर लड़की से विवाह करने की व्यवस्था की । रघुनाथ ने बाह्य रूप में अपने पिता के प्रति कोई अवज्ञा नहीं दिखलायी और उनके द्वारा निर्दिष्ट हर कार्य करते रहे । उन्होंने अपने पत्नी को भी सामान्य रूप में ग्रहण किया । लेकिन मन से वे अपनी पत्नी और धन दोनों के प्रति निरासक्त रहे । सारी दौलत और सुखों के बीच वे आंतरिक तौर पर असंतुष्ट बने रहे । आध्यात्मिक प्रगति की तीव्र इच्छा के कारण वे क्रमशः अधीर होते गये । उन्होंने सारे सांसारिक बंधनों और सुखों का परित्याग करने का निश्चय कर लिया । एक दिन वे घर से निकल पड़े और पैदल ही पुरी के लिए रवाना हो गये । तब उनकी आयु 19 वर्ष की थी । दो सप्ताह तक चलकर उन्होंने यह श्रम-साध्य पैदल यात्रा तय की और वे पुरी पहुंचे ।

इस बार चैतन्य ने उन्हें स्वीकार करने से इंकार नहीं किया, क्योंकि रघुनाथ को आध्यात्मिक शिक्षण के लिए स्वरूप दामोदर के हवाले कर दिया । छह गोस्वामियों में से रघुनाथदास को ही गुरु के साथ सर्वाधिक दिनों तक साथ रहने का सौभाग्य मिला था । वे पुरी में चैतन्य के साथ लगभग 16 वर्ष रहे । गुरु के दिवंगत होने के बाद वे आजीवन वृंदावनवास करने के लिए चले गये ।

रघुनाथ ने पुरीवास काल में इस तरह का अत्यंत कठोर संयम भरा जीवन व्यतीत किया कि उन्हें आदर्श संन्यासी माना जाता था । स्वयं चैतन्य रघुनाथ द्वारा आचरण में लाये गये संयमों के लिए उनकी प्रशंसा करते थे । चैतन्य के निधन के बाद वे पुरी छोड़कर वृंदावन चले गये । वहां वे संत भाई रूप और सनातन के साथ रहने लगे । वे राधा-कुंड के निकट कठोर संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे ।

चैतन्य चरितामृत के विख्यात रचियता कृष्णदास कविराज वृंदावन में रघुनाथदास की वृद्धावस्था में उनके शिष्य बने । वृंदावन में कृष्णदास और घनिष्ठ सहयोगी भी थे । चैतन्य के जीवन के अंतिम भाग का **चैतन्य चरितामृत** में वर्णित विस्तृत विवरण कृष्णदास कविराज को गुरु रघुनाथदास की प्रत्यक्ष जानकारी से प्राप्त हुआ होगा ।

रघुनाथदास को गुरु से श्रीकृष्ण की कृष्ण पाषाण-मूर्ति के रूप में गोवर्धन शिला हस्तगत हुई थी । वे आजीवन इसकी नित्य पूजा करते रहे । वृंदावन में भी वे पुरी की तरह ही अत्यंत कठोर संयमों का पालन करते रहे ।

वृद्धावस्था में वे अंधे हो गये । उनकी प्रसिद्ध कृति **दानकेलि चिंतामणि** उनकी अंधावस्था के दिनों में ही रची गई थी ।

रघुनाथ की रचनाएं बहुत विस्तृत नहीं हैं लेकिन वे अपने गुणों के कारण उल्लेखनीय हैं । उनकी सारी कृतियां संस्कृत में – गद्य और पद्य दोनों में हैं । वे प्रतिभाशाली कवि और लेखक थे । उनकी रचनाओं का विषय मुख्यतः राधा-कृष्ण पंथ के रहस्यात्मक पक्ष हैं । उनकी अधिकांश रचनाएं भावाकुल गीतात्मक स्तव और स्तोत्र हैं जिन्हें **स्तवावली** शीर्षक से संग्रहीत किया गया था ।

रघुनाथ की अगली कृति **मुख-चरित्र** थी । यह **चंपू काव्य** अर्थात इसमें गद्य और पद्य और वाक्चातुर्य-पूर्ण संवाद भी हैं । **मुख-चरित्र** के कुछ भागों में और अन्य स्तवों में भी उन्होंने रूप, सनातन और जीव का अभिनंदन किया है । उन्होंने यह उल्लिखित किया है कि रूप, सनातन और जीव उनके प्रति सदैव स्नेहपूर्ण थे । **मुख-चरित्र** के अंतिम श्लोक में उन्होंने कृष्णदास कविराज (जिन्होंने बाद में **चैतन्य चरितामृत** लिखा) जिनके साथ उन्होंने राधा-कुंड में अपने अंतिम दिन बिताए, का उल्लेख किया है ।

कृष्णदास कविराज के अनुसार रघुनाथदास ने दैनंदिन विवरण के रूप में चैतन्य का एक जीवनचरित भी लिखा था । **पद-कल्पतरु** नामक वैष्णवदास द्वारा संकलित बांग्ला वैष्णव संग्रह में तीन पदों के रचियता रघुनाथदास बतलाये गये हैं । इनके अलावा उनकी अन्य सभी रचनाएं संस्कृत में हैं ।

(4) गोपाल भट्ट गोस्वामी

गोपाल भट्ट के व्यक्तिगत जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है । वे दक्षिण भारत के ब्राह्मण थे । उनके पिता त्रिमल्ल भट्ट बताए जाते हैं । कहा जाता है कि चैतन्य अपनी दक्षिण भारत की तीर्थ-यात्रा के दौरान श्रीरंगम में त्रिमल्ल भट्ट के अतिथि रहे थे (एक अन्य स्रोत के अनुसार गोपाल के पिता का नाम वेंकट भट्ट था ।) गोपाल के पिता चैतन्य के आध्यात्मिक व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुए थे और उनके प्रबल प्रशंसक बन गये थे ।

चैतन्य वर्षा ऋतु के चार महीने उनके घर में अतिथि रहे । उस समय गोपाल भट्ट बालक ही थे लेकिन उस अल्पकाल में ही गोपाल चैतन्य के जादुई आकर्षण के वश में आकर भक्त बन गये ।

ऐसा नहीं प्रतीत होता कि गोपाल भट्ट कभी गुरु से मिलने पुरी गये हों । वह वृंदावन रहने के लिए आये । रूप, सनातन और रघुनाथदास वहां पहले ही से रह रहे थे ।

गोपाल भट्ट रूप और सनातन से बहुत छोटे थे । वृंदावन में वह उनके निधन के बाद भी काफी दिनों तक जीवित रहे ।

कवि कर्णपुर के एक श्लोक के अनुसार गोपाल भट्ट संगीत और नाट्य में दक्ष थे ।

गोपाल के प्रधान शिष्य श्रीनिवास थे जिनको जीव गोस्वामी ने आचार्य की उपाधि दी थी । बाद में श्रीनिवास आचार्य बंगाल के वैष्णवों के तीन शीर्षस्थ नेताओं में परिगणित हुए । अन्य दो नरोत्तम ठाकुर और श्यामानंद थे । श्रीनिवास ने गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी से वैष्णव शास्त्रों का अध्ययन किया था ।

गोपाल भट्ट के व्यक्तिगत जीवन की तरह उनकी कृतियों के बारे में भी विपरीत विचार और अनुश्रुतियां मिलती हैं । उनकी कृतियों के बारे में विद्वानों की राय एक रूप नहीं है । गोपाल भट्ट को **भागवत भक्ति विलास** नामक पुस्तक की रचना का श्रेय

दिया जाता है । डा. सुशील कुमार डे और डा. बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार **हरि भक्ति विलास** नामक विशाल कृति सनातन और गोपाल भट्ट के बीच किसी प्रकार के सहयोग से लिखी गयी होगी ।

(5) रघुनाथ भट्ट गोस्वामी

गोस्वामी रघुनाथ भट्ट के जीवन और गतिविधियों के बारे में काफी कम ज्ञान है । विद्वानों की राय है कि भट्ट रघुनाथ (कायस्थ रघुनाथदास गोस्वामी से भिन्न) ने कोई पुस्तक नहीं लिखी ।

रघुनाथ भट्ट की तरह गोपाल भट्ट भी बाल्यावस्था में ही चैतन्य के संदर्भ में आये । चैतन्य वृंदावन से लौटते हुए वाराणसी में रघुनाथ भट्ट के पिता तपन मिश्र के अतिथि थे । बालक रघुनाथ उसी अवसर पर गुरु के संपर्क में आए और उनकी आध्यात्मिक मोहकता से खिंच गये ।

बाद में रघुनाथ भट्ट चैतन्य से मिलने पुरी आये । इस बार वे गुरु के साथ आठ महीने रहे ।

इसके बाद चैतन्य ने उन्हें वृंदावन जाने और रूप तथा सनातन के उद्देश्य को पूरा करने के काम में लगने की राय दी । चैतन्य ने रघुनाथ भट्ट को तुलसीदल की एक माला दी ।

कृष्णदास कविराज के अनुसार रघुनाथ भट्ट **श्रीमद्भागवत** के अच्छे ज्ञाता थे । उनके **श्रीमद्भागवत** पाठ को सुनकर रूप गोस्वामी बहुत प्रसन्न हुए थे ।

रघुनाथ भट्ट गोस्वामी ने भी वृंदावन में ही अपना जीवन छोड़ा ।

(6) जीव गोस्वामी

जीव गोस्वामी सनातन और रूप गोस्वामी के कनिष्ठ भाई अनुपम (वल्लभ को स्वयं चैतन्य द्वारा प्रदत्त नाम) के इकलौते बेटे थे । रूप के जीवन और गतिविधियों के विवरण के सिलसिले में अनुपम की असमय मृत्यु का उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

ऐसा नहीं प्रतीत होता कि जीव गोस्वामी कभी चैतन्य के व्यक्तिगत संपर्क में आये हों । इस संबंध में वे वृंदावन के गोस्वामियों में एकमात्र अपवाद थे । वे रघुनाथदास, गोपाल भट्ट और रघुनाथ भट्ट की ही नयी-पीढ़ी के थे । प्रसंगवश यहां यह उल्लेखनीय है कि ये अंतिम चारों गोस्वामी चैतन्य से आयु में बहुत छोटे थे जबकि सनातन और रूप गोस्वामी गुरु से अधिक आयु के थे ।

जब रूप और सनातन घर छोड़कर वृंदावन रहने के लिए आए तब जीव बालक ही थे । हो सकता है उन्होंने चैतन्य को देखा भी न हो । लेकिन अत्यंत अल्पवय से ही गुरु का प्रभाव अप्रत्यक्ष रीति से उन पर पड़ने लगा था । उनके पिता अपनी अकाल

मृत्यु के कुछ ही पूर्व चैतन्य के आकर्षण में पड़े थे। उनके दोनों चाचा चैतन्य के शिष्य बन गये थे और अपने गुरु के आदेश पर संन्यासी होकर वृंदावन में रह रहे थे। जीव परिवार के सदस्यों से ये तथ्य सुना करते थे। चैतन्य के त्यागमय जीवन और उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कथा भी तब तक उनकी पारिवारिक चर्चा का विषय बन चुकी थी।

जीव के बड़े होने पर उनके स्वभाव में स्पष्ट धार्मिक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुईं। उनके मन में चैतन्य, अपने दोनों चाचाओं और अपने दिवंगत पिता का मार्ग अनुसरण करने की तीव्र आकांक्षा उदित हुई। जीव ने प्रारंभिक वय में ही स्वयं संन्यासी बनने की बात सोच ली थी।

जीव में बाल्यकाल से ही शास्त्र अध्ययन की प्रतिभा भी दृष्टिगोचर हुई। इससे भी उनके भावी उद्देश्य की भूमि तैयार हुई।

संन्यासी जीवन अपनाने की उनकी इच्छा बलवती हो गयी और उन्होंने चैतन्य संप्रदाय में दीक्षित होने के लिए गृह-त्याग कर दिया।

उस समय सनातन और रूप के परिवार के सभी लोग फतोयाबाद में रहते थे। जीव संन्यासी के रूप में वहां से सर्वप्रथम नवद्वीप की यात्रा पर गये।

वहां श्रीवास के घर में वे नित्यानंद से मिले। स्वयं चैतन्य की पावन स्मृति से जुड़ा होने के कारण यह घर उनके लिए तीर्थ बन गया था।

नवद्वीप में कुछ समय बिताने के बाद वे वाराणसी चले गये। वहां उन्होंने व्याकरण, स्मृति और वेदांत के विश्रुत परम विद्वान मधुसूदन वाचस्पति से कुछ वर्षों तक अध्ययन किया।

जीव वाराणसी से वृंदावन रहने के लिए चले गये। वहां वे अपने विख्यात चाचाओं — सनातन और रूप के साथ रहे। तब से जीव ने वृंदावन में संन्यासी का संयमी जीवन, साथ विद्वान का जीवन आरंभ किया। यहां पर जीव ने अपने चाचाओं से भक्ति-शास्त्र का विशेषकर अध्ययन किया। बाद में उन्होंने सनातन और रूप गोस्वामी दोनों की गौडीय वैष्णव मत संबंधी साहित्यिक रचनाओं में अत्यंत योग्यतापूर्वक सहयोग दिया। जीव सर्वतोमुखी विद्वान बने। कुछ ही समय में वैष्णव जगत के भीतर और बाहर उनकी प्रतिभाशाली विद्वत्ता मान्य हो गई। उन्होंने संस्कृत में लगभग 20 पुस्तकों की रचना की जिनमें गौडीय वैष्णव मत का मूल सार निहित माना जाता है।

सनातन और रूप गोस्वामी के निधन के पश्चात जीव समग्र गौडीय वैष्णव संप्रदाय समादृत नेता हो गये। यदि उपासना के सिद्धांत या व्यवहार के संबंध में कोई विवाद उठ खड़ा होता था तो जीव को ही सर्वोच्च प्रमाण माना जाता था। सारे लोग विवादग्रस्त विषयों पर उनके निर्णय को स्वीकार करते थे। शास्त्रों की व्याख्या के विषय में बंगाल के वैष्णव जीव से पत्र-व्यवहार किया करते थे और सारे विषयों में उनकी सलाह अंतिम

मानी जाती थी ।

श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानंद — बंगाल के वैष्णवों के उत्तर-कालीन नेता माने जाने वाले ये तीनों प्रसिद्ध व्यक्ति जीव गोस्वामी के शिष्य थे । जीव उनसे भक्ति-शास्त्र पढ़े हुए इन तीन शिष्यों के द्वारा ही बंगाल में शास्त्र प्रचार का कार्य संपन्न हुआ । गौडीय वैष्णव मत की तत्व-विद्या मुख्यत: जीव गोस्वामी द्वारा रचित है ।

वृंदावन के गोस्वामियों में वे सर्वाधिक बहुसर्जक और बहुमुखी लेखक थे । उनकी पुस्तकें काफी बड़ी हैं और उनके विषय भी विविध हैं, उदाहरण के लिए वैष्णव तत्व-विद्या, वैष्णव उपासना, वैष्णव काव्य, रस-शास्त्र, वैष्णव दर्शन, व्याकरण आदि ।

अन्य गोस्वामियों की तरह जीव ने भी मृत्युपर्यंत वृंदावन में रहकर संन्यासी का जीवन व्यतीत किया ।

सारे गोस्वामियों की जन्म और मृत्यु तिथियां सुनिश्चित रूप में ज्ञात नहीं हैं ।

छहों गोस्वामियों के अस्थिशेष वृंदावन में समाधि में हैं । वैष्णव भक्तों के लिए बहुत ही सादगीपूर्ण स्मारकों के भीतर की ये समाधियां आदर-भाजन और तीर्थ बन गई हैं ।

4

बंगाल का वैष्णव संप्रदाय और चैतन्य

ध्यान देने पर यह दिलचस्प बात लगती है कि वृंदावन के अग्रणी वैष्णव और नवद्वीप के निष्ठावान जन चैतन्य के प्रथम अनुयायी थे पर थोड़े ही समय में दोनों पक्षों में धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या में मतभेद प्रकट होने लगा।

यहां यह भी याद रखना चाहिए कि बंगाल के सभी वैष्णव बंगाल के वैष्णव संप्रदाय के अनुयायी नहीं थे। वास्तव में तो प्रांत के अधिकांश वैष्णव चैतन्य मत की वृंदावन के गोस्वामियों-कृत व्याख्या को स्वीकार करते थे। वृंदावन के गोस्वामियों द्वारा प्रतिपादित रूप में सिद्धांत ही बंगाल के वैष्णवों में प्रचारित हुआ और उनके द्वारा अनुसरण किया गया। यह प्रधानत: जीव गोस्वामी के शिष्य श्रीनिवास आचार्य और नरोत्तम ठाकुर के प्रयासों का फल था।

लेकिन यह खास नवद्वीप में विकसित मूल सिद्धांत नहीं था। संक्षेप में, बंगाल संप्रदाय के अनुसार चैतन्य स्वयं कृष्ण थे, अत: उनकी पूजा होनी चाहिए थी। बंगाल संप्रदाय के विचारकों में प्रमुख मुरारी गुप्त, कवि कर्णपुर, वृंदावनदास, और दूसरे लोग थे, जिनमें से सबने चैतन्य के ऊपर लिखा। इनकी कृतियों में नवद्वीप काल के चैतन्य का प्राबल्य था। नवद्वीप वाले चैतन्य ही उनके पूजा पात्र थे। मुरारी, कवि कर्णपुर, वृंदावनदास, लोचनदास और जयानंद ने चैतन्य के अंतिम बारह वर्षों के उड़ीसा कालीन जीवन के बारे में विस्तार से नहीं लिखा जबकि सनातन, रूप, रघुनाथदास और जीव गोस्वामी जैसे वृंदावन के नैष्ठिकों के स्तोत्रों में तथा कृष्णदास कविराज (जो रघुनाथदास के शिष्य होने के कारण वृंदावन संप्रदाय के थे) के **चैतन्य चरितामृत** में चैतन्य के पुरी कालीन जीवन, विशेषकर उनके 'दिव्य उन्माद' की अवस्था को प्रमुख स्थान दिया गया था।

संक्षेप में, वृंदावन संप्रदाय की रचनाओं में चैतन्य को कृष्ण पूजा का माध्यम माना गया था। दूसरी ओर बंगाल संप्रदाय के अनुसार चैतन्य ही लक्ष्य और अंतिम उद्देश्य थे। यह इस संप्रदाय के अनुयायियों की सभी प्रमुख रचनाओं और उनके द्वारा रचे गये पदों से भी प्रकट है।

नवद्वीप के मुरारी गुप्त, कांचनपल्ली या कांचरपारा के शिवानंद सेन (कवि कर्णपुर उर्फ परमानंद सेन के पिता), और श्रीखंड के नरहरि सरकार चैतन्य पूजा के प्रथम प्रतिपादक थे ।

चैतन्य के परम भक्त शिवानंद सेन बहुत धनी और प्रभावशाली व्यक्ति थे । वे प्रति वर्ष रथ-यात्रा के अवसर पर चैतन्य से मिलने पुरी जाने वाले बंगाल के अनुयायियों का नेतृत्व किया करते थे । शिवानंद बहुत अच्छे पद-कर्ता भी थे । उनके पुत्र परमानंद (कवि कर्णपुर) बाद में **चैतन्य चन्द्रोदय** (नाटक) और **महाकाव्य** के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए ।

शिवानंद चैतन्य के सबसे पहले के अनुयायी-मंडल में बहुत उच्च-स्थानीक व्यक्ति थे, नरहरि भी भक्त पद-कर्ता थे । चैतन्य की स्तुति में उनके पदों का गौडीय वैष्णव साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है । शिवानंद की तरह उनके भी अनेक पदों में विश्वम्भर (चैतन्य) को कृष्ण स्वरूप ही माना गया है ।

मुरारी गुप्त नवद्वीप में चैतन्य के सर्वप्रथम सहयोगियों में से थे और वहां उनके प्रधान अनुयायियों में थे । वे चैतन्य के वरिष्ठ सहकर्मी थे और आचार्य के प्रिय सहचारी के रूप में उनके नवद्वीप में हुए सारे अनुभवों के साक्षी थे । मुरारी के ही घर में चैतन्य पहली बार भाव-समाधि में गये थे । चूंकि मुरारी में कवि प्रतिभा थी इसलिए नवद्वीप के भक्तों ने निश्चय किया कि वे गुरु के धार्मिक अनुभवों का विवरण लिखेंगे । मुरारी ने स्वयं अपने **कदच** (रोजनामचे के रूप में लिखे गये विवरण) में इसका संकेत दिया था ।

डा. बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार मुरारी ने चैतन्य के निधन के दो वर्ष के भीतर ही में **कदच** की रचना की जो चैतन्य के जीवन के बारे में सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोतों में है । गुरु के ऊपर अपना **महाकाव्य** लिखने में कवि कर्णपुर आधार सामग्री के बारे में मुरारी गुप्त के **कदच** के बहुत ऋणी थे ।

मुरारी चैतन्य के परम भक्त थे । वे गुरु की अधिकांश 'नवद्वीप-लीला' के साक्षी रहे, और उनका दृढ़ विश्वास था कि चैतन्य ईश्वर अवतार हैं । जैसा पहले कहा जा चुका है बंगाल के वैष्णव संप्रदाय के अन्य जनों की तरह ही उनके लिए भी चैतन्य पूजा लक्ष्य थी । इस संबंध में कवि कर्णपुर-कृत **श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य** में वर्णित एक घटना का उल्लेख किया जा सकता है ।

एक बार मुरारी अद्वैत आचार्य के साथ पुरी गये । नरेंद्र सरोवर के पास आकर मुरारी बैठ गये और बोले – "मैं यहां तक आपकी दया के कारण आ पाया हूं, पर अब आगे नहीं जा पाऊंगा । मैं जगन्नाथ के भी दर्शन नहीं कर पाऊंगा क्योंकि मैं बहुत कुपात्र और पापी जीव हूं । कृपया गुरु को यह बतला दें । संभव है, बाद में मैं जा पाऊं ।"

यह कहकर वे वहीं अचल बैठ गये ।

दूसरे भक्त चैतन्य के पूर्व निर्देश के अनुसार पहले जगन्नाथ का दर्शन करके फिर गुरु के पास गये।

वहां चैतन्य ने बहुत व्याकुलता से पूछा — "मुरारी कहां है ? मुरारी कहां है ?"

भक्त-जन मुरारी को यह बतलाने के लिए नरेंद्र सरोवर आये। यह सुनकर मुरारी आंखों से अश्रुधारा बहाते, विह्वल वाणी, भागते हुए गये और हाथ जोड़े हुए उन्होंने गुरु को देखा। वे एक भी शब्द बोल नहीं पाये। चैतन्य ने उन्हें गले लगा लिया और उनकी आंखों से अश्रुधारा मुरारी की पीठ पर बह चली। इस घटना से स्पष्ट प्रकट होता है कि चैतन्य से उनकी कितनी घनिष्ठता थी। इस विवरण से एक और बात भी प्रकट होती है कि मुरारी की दृष्टि में चैतन्य श्रीरामचंद्र ही थे जिनके वे उपासक थे।

यह घटना चैतन्य पूजा की सूचक है। दूसरे भक्तजन चैतन्य के निर्देशानुसार पहले जगन्नाथ के दर्शन के लिए गये फिर चैतन्य के पास गये। लेकिन मुरारी चैतन्य को पहले प्रणाम करना चाहते थे और उनकी इच्छा पूरी हुई।

बंगाल के वैष्णव संप्रदाय का बहुत कुछ यही विचार था। मुरारी गुप्त और कवि कर्णपुरी की संस्कृत जीवनियों तथा वैष्णव पद-कर्ताओं के अनेकानेक बांग्ला और ब्रज-बोली पदों से चैतन्य पूजा को ही लक्ष्य मानने की पुष्टि होती है।

चैतन्य के जीवन-काल में ही उनकी ईश्वर के रूप में पूजा होती थी यह उनकी बंगाली जीवनियों में स्पष्ट है। पर वृंदावन के विद्वान गोस्वामियों की संस्कृत रचनाओं का वास्तविक लक्ष्य यह स्थापित करना था कि पंथ के परम ईश्वर के रूप में श्रीकृष्ण ही एकमात्र पूजापात्र हैं। उनके अनुसार मात्र कृष्ण ही परम ईश्वर है। लेकिन चैतन्य की अवतारी ईश्वरीयता और उनका परम ईश्वर होना बंगाल के वैष्णव संप्रदाय का प्रिय विषय था।

बंगाल में चैतन्य मत के केंद्र

चैतन्य मत के, अर्थात गौडीय वैष्णव संप्रदाय के तीन प्रमुख केंद्र थे। बंगाल में नवद्वीप, उड़ीसा में पुरी, और उत्तर प्रदेश में वृंदावन प्रधान केंद्र थे जहां से चैतन्य मत का प्रचार हुआ था।

बंगाल में प्रमुख केंद्र नवद्वीप ही था जहां गुरु का उदय हुआ था। बंगाल में नवद्वीप चैतन्य मत का प्रमुख केंद्र था जो बंगाल में चैतन्य की प्रथम शिष्य और अनुयायी मंडली की धर्म प्रचार गतिविधियों का प्रथम केंद्र था। आगे चलकर बंगाल के विविध हिस्सों में कई उपकेंद्र बने। क्योंकि जिन स्थानों में चैतन्य के सहयोगी रहते थे वे भी चैतन्य मत के और आगे प्रसार के केंद्र बने। चैतन्य के साथियों और अनुयायियों के निवास-स्थान 'श्रीपत' कहलाये। ये सब स्थान गौडीय वैष्णव संप्रदाय के प्रचार केंद्र बने और बाद में इन्हें तीर्थ-स्थान माना जाने लगा। आगे डा. बिमान बिहारी मजूमदार

द्वारा ऐसे स्थानों की व्यवस्थित की गयी सूची दी जा रही है।

नवद्वीप के प्रधान केंद्र के अलावा चैतन्य के प्रधान सहयोगी नदिया, बर्दवान, हुगली, चौबीस परगना और जैसोर जिलों के अंतर्गत स्थानों में रहते थे जिन्होंने वैष्णव सिद्धांत का उपदेश किया। इन जिलों के कुछ स्थानों का यहां उल्लेख किया जा रहा है क्योंकि ये चैतन्य के अग्रणी साथियों के जन्म-स्थान और/या निवास-स्थान थे और इस कारण वैष्णव मत के लघु केंद्र बन गये। नदिया ज़िले में और नवद्वीप नगर के आसपास चैतन्य के कई भक्त बरगाछी, दोगाछी, मानगाछी, कुलिया, पहाड़पुर, चंपाहाटी, सालिग्राम आदि गांवों में रहते थे। ये स्थान वैष्णव स्थानों के रूप में निर्दिष्ट हुए। इसमें से बरगाछी नामक गांव में कृष्णदास चैतन्य और नित्यानंद के संपर्क में रहने के लिए आकर रहने लगे थे। कृष्णदास का मूल स्थान बिहार में था।

फुलिया नदिया जिले का ही प्रसिद्ध वैष्णव केंद्र था। सुग्रीव मिश्र, गोविंद तथा शिवानंद पंडित, काशीश्वर मिश्र, जीव पंडित और तपन आचार्य जैसे चैतन्य के प्रधान सहयोगी वहां रहते थे।

शांतिपुर में संतसम अद्वैत आचार्य रहते थे तथा वहां मुकुंद राय, उद्धरण दत्त, और कृष्णानंद राय का जन्म हुआ था। कलकत्ता से रानाघाट के बीच गंगा के पूर्वी तट पर, तथा कलकत्ता से गुप्तीपाड़ा के बीच गंगा के पश्चिमी तट पर कई स्थानों में चैतन्य के अनेक भक्त रहते थे। वराहनगर, सुखचारा, पानीहाटी, अरिआदहा, खरदहा, कांचनपल्ली और कुमारहट्ट पूर्वी तट पर अकना, महेश, तारा आटपुर, जीरात और गुप्तीपाड़ा पश्चिमी तट पर वैष्णव मत के प्रसार के केंद्र बने। इसी तरह बर्दवान जिले में कालना, कुलिनग्राम, दाई हाट, कटवा, कुलई, श्रीखंड और बेलगान वैष्णव क्षेत्रों में विख्यात हुए।

चैतन्य के सुप्रसिद्ध सहयोगियों में से नित्यानंद की जन्मभूमि बीरभूम जिले में थी। नित्यानंद के निधन के पश्चात इस जिले के मायानदल, मंगलडीही, कांदरा आदि अनेक स्थान कीर्तन-गायन और वैष्णव शास्त्रों के संस्कृति केंद्र के रूप में प्रसिद्ध हुए। जैसोर जिले के आगे लिखित स्थान—बोधखाना, जसहरा और बूरान — श्रीपत के रूप में प्रसिद्ध थे। राजशाही जिले में घोड़ाघाट गोकुलानंद और वनमालीदास के जन्म-स्थान के रूप में प्रसिद्ध हुआ। प्रतिष्ठित भाई सनातन और रूप मालदह जिले के रहने वाले थे। जंगली नामक एक अन्य वैष्णव भक्त का निवास-स्थान इसी जिले का जंगलीटोटा नामक स्थान था। जंगली सीता ठकुरानी के शिष्य थे। पबना में काल कृष्णदास का श्रीपत सोनातला में था। पूर्व बंगाल के सुदूर चट्टग्राम (चटगांव) जिले में पुंडरीक विद्यानिधि, वासुदेव दत्त और गदाधर पंडित के पिता माधव मिश्र पैदा हुए थे। चट्टग्राम में बाद में वैष्णव साहित्य की अनेक पांडुलिपियां प्रकाश में आईं। चैतन्य के भक्त त्रिपुरा जिले में भी थे। एक बार रथ-यात्रा के अवसर पर पुरी में एकत्रित भक्तों के सम्मुख

अद्वैत आचार्य ने घोषित किया कि चैतन्य ईश्वर हैं। उस दिन वहां चट्टग्राम, त्रिपुरा, श्रीहट्ट (सिलहट) आदि पूर्वी जिलों के भक्त मौजूद थे।

चैतन्य के जीवन-काल में वैष्णव मत बंगाल के पश्चिमी जिलों में व्यापक पैमाने पर प्रचलति था। बाद में पूर्वी बंगाल की जनता में वैष्णव मत सर्व प्रभावी हो गया। यह अद्वैत आचार्य, नित्यानंद, गदाधर और विष्णुदास के वंशजों के धर्म प्रचार कार्य का परिणाम था। पूर्वी बंगाल के ढाका और अन्य जिलों में कई वैष्णव केंद्र बने जहां वैष्णव मत जनप्रिय धर्म हो गया। पूर्वी बंगाल में वैष्णव मत और पंथ का सर्वाधिक विख्यात केंद्र था। बड़े पैमाने पर जन्माष्टमी (कृष्ण जन्मोत्सव), विशाल कीर्तन मंडली, शोभा-यात्राएं और अन्य प्रकार के सामूहिक कीर्तन-गायन ढाका क्षेत्र में वैष्णव मत के कुछ जनप्रिय रूप थे।

5

चैतन्य मत और साहित्य

गौडीय वैष्णव मत का उल्लेखनीय परिणाम मध्ययुगीन बंगाल की संस्कृति के अनेक क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हुआ। चैतन्य मत ने सामान्यत: बंगाल में और विशेषत: बंगाल, उड़ीसा और वृंदावन में संप्रदाय के अनुयायियों के बीच सांस्कृतिक गतिविधियों का एक महान युग ला दिया।

इसने ऐसे युग का सूत्रपात किया जिसमें साहित्य, संगीत, नाटक आदि के क्षेत्र में सृजनात्मक शक्ति महत्वपूर्ण रूप में दृष्टिगोचर हुई। मध्य युग में साहित्य-रचना कतिपय सीमा तक परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित थे, पर वे भिन्न विषय थे। इसलिए इन पर दो भिन्न अध्यायों में विचार किया गया है।

मध्यकालीन बांग्ला साहित्य चैतन्य मत और आंदोलन के प्रत्यक्ष प्रभाव में पल्लवित हुआ। ऐसा बंगाल में चैतन्य के अनुयायियों के कारण हुआ। प्रभूत सामग्री के कारण मध्यकालीन बंगाल के वैष्णव साहित्य का अधिक विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है।

इसके पूर्व संस्कृत वैष्णव साहित्य पर विचार किया जायेगा। इसकी रचना मुख्यत: चैतन्य के वृंदावन स्थित अनुयायियों ने की। वृंदावन के गोस्वामियों ने अपनी कृतियों में वैष्णवों के उदात्त धर्म-दर्शन की व्याख्या की। ये समग्र कृतियां संस्कृत भाषा में थीं। अतएव जहां तक धर्म-ग्रंथों, दर्शन-ग्रंथों का प्रश्न है मध्यकाल का संस्कृत साहित्य भी बहुत समृद्ध हुआ। गोस्वामियों की संस्कृत काव्य-रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं। इन सभी कृतियों में महान विद्वत्ता का अद्वितीय मूल्य निहित है। वृंदावन के गोस्वामियों से संबंधित अध्याय में इस विषय पर कुछ हद तक विचार किया गया है।

चैतन्य की मृत्यु के बाद बंगाल का वैष्णव समुदाय दुख और अकेलेपन की प्रबल अनुभूति से निर्जीव पड़ा हुआ था। कीर्तन मंडलियों का आकर्षण समाप्त हो गया। इन वर्षों में देश में हर ओर गुंजित होता रहा उनका संगीत अब गंगा तट पर नहीं सुनायी पड़ता था। विकट क्षति की भावना से पीड़ित चैतन्य के साथी एक के बाद एक दुनिया छोड़ चले। गुरु के निधन के पचास वर्ष बाद तक की अवधि के इतिहास में कोई

उत्साहपूर्ण गतिविधि नहीं दिखाई देती। रूप, सनातन, लोकनाथ, गोपाल भट्ट, रघुनाथदास और अन्य लोग धैर्यपूर्वक अपने काम में लगे रहे क्योंकि स्वयं गुरु ने उन्हें जो निर्दिष्ठ किया था उसे करना वे अपना परम कर्तव्य मानते थे। रूप और सनातन चैतन्य द्वारा निर्दिष्ट दिशा में अनवरत ग्रंथ रचना करते रहे। जब बंगाल का वैष्णव संप्रदाय इस दुख से पुन: ऊपर उठा तो इसका ऐतिहासिक गौरव अब बंगाल में वर्तमान नहीं था। नित्यानंद और अद्वैत आचार्य अब इस लोक में नहीं थे। कुछ समय उपरांत नरहरि भी उनका अनुगमन कर गये थे।

वैष्णव भक्तों और अनुयायियों की दृष्टि पुरी से हटकर वृंदावन की ओर गयी। महान कृतियों की रचना हुई और अनेक लेखकों ने वैष्णव उपासना का शस्त्र संकलित किया। इन्हीं आंदोलनों से मध्यकालीन बांग्ला वैष्णव मत का संप्रदाय उदित हुआ। समृद्ध दार्शनिक और काव्यात्मक साहित्य रचा गया और जन प्रचलित किया गया। चैतन्य मत के अनुयायियों की दृष्टि में वृंदावन को विशेष मान्यता मिली। बंगाल के वैष्णव ऐसी किसी पुस्तक को मान्य नहीं करते थे जिसे वृंदावन के गुरुओं की सहमति प्राप्त नहीं होती थी।

वृंदावन के गोस्वामियों द्वारा रचित संस्कृत साहित्य से वैष्णव समुदाय में नियमित विश्वास जगा।

चैतन्य उपासना की प्रारंभिक अवस्था से ही असाधारण सांस्कृतिक गतिविधि दृष्टिगोचर होती है। सुनिश्चित रूप में कहा जाये तो चैतन्य प्रेरित साहित्य प्रारंभिक चरणों में मुख्यत: संस्कृत में था। कहने की आवश्यकता नहीं वृंदावन के गोस्वामियों की रचनाएं सर्वाधिक उल्लेख्य थीं। तथाकथित बंगाल शाखा के लेखकों में केवल मुरारी गुप्त और कवि कर्णपुर उल्लेखनीय हैं। चैतन्य पंथ द्वारा रचित साहित्य में गीतात्मक रचनाएं और जीवनचरित ये दो विशिष्ट प्रकार हैं। गीतात्मक गानों और कथा तत्व से प्रभूतत: समृद्ध इस विशाल साहित्य में दर्शन, संस्कार, रस शास्त्र आदि की कृतियां थीं। इस प्रकार सब कुछ को जोड़कर वैष्णव मत द्वारा रचित साहित्य सर्वतोमुखी था।

चैतन्य द्वारा प्रेरित मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की चरितात्मक और वर्णनात्मक कृतियों का प्रतिनिधित्व मुरारी गुप्त और कवि कर्णपुर (शिवानंद सेन के पुत्र परमानंद सेन) की रचनाएं करती हैं। किंतु वैष्णव धुरंधरों की समृद्धता काव्य रचनाएं साहित्यिक दृष्टि से अधिक मूल्यवान हैं। चैतन्य पंथ की संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ये ही स्मरणीय देन हैं। रूप गोस्वामी, रामानंद राया, रघुनाथदास, कवि कर्णपुर, जीव गोस्वामी, कृष्णदास कविराज और अन्यों द्वारा रचित कविताएं, श्रुतियां, नाटक, कथाएं, गान, चंपू, गीत आदि का इस संबंध में उल्लेख किया जा सकता है। रूप गोस्वामी द्वारा संकलित महान संग्रह **पद्यावली** वैष्णव कवियों की भावात्मक और काव्यात्मक रचनाओं का एक और उदाहरण है। इन वैष्णव कवियों में अनेक कनिष्ठ कवि ऐसे थे जो भक्तिपरक कविताओं

के लिए उल्लेखनीय माने गये।

कभी कभी संस्कृत वैष्णव साहित्य बांग्ला भाषा लेखन का आदर्श बना। जीवनचरितात्मक कृतियों की रचना इसका एक उदाहरण है। मुरारी गुप्त और कवि कर्णपुर ने संस्कृत में चैतन्य के जीवनचरित लिखे। ये चरितात्मक कृतियां कृष्णदास कविराज, वृंदावनदास, लोचनदास, जयानंद और दूसरों द्वारा लिखे गये बांग्ला भाषा की गुरु की जीवनियों की पूर्ववर्ती थीं। बांग्ला साहित्य में प्रभूत मात्रा में जीवनचरित लिखे गये। चैतन्य के उदय से पूर्व इस भाषा में यह विधा दृष्टिगोचर नहीं थी।

मुरारी गुप्त कृत संस्कृत **चैतन्य चरितामृत** गुरु का प्रथम जीवनचरित है। यह सर्वांगपूर्ण कृति काव्य के रूप में रचित हुई थी लेकिन वर्णन विधि पुराणों का था जिनमें सामान्यतया एक वक्ता श्रोताओं के सामने विषय का वर्णन करता है। मुरारी गुप्त कृत **चैतन्य चरितामृत** में लेखक वक्ता था और दामोदर पंडित श्रोता थे। मुरारी गुप्त ने शुरू में ही उल्लेख किया है कि उन्होंने श्रीवास (जिनके घर पर चैतन्य अपने प्रारंभिक अनुयायी मंडली से मिलते थे और कीर्तन-गायन तथा धार्मिक भाव-विह्वलता में रातें व्यतीत किया करते थे) के निर्देश पर इस पुस्तक की रचना की। यह भी स्मरणीय है कि इस पुस्तक में श्रोता के रूप में उल्लिखित दामोदर पंडित चैतन्य के उन चार शिष्यों में से थे जो गुरु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के बाद पुरी की यात्रा पर उनके साथ गये थे। मुरारी गुप्त के सर्वांगपूर्ण काव्य में 78 सर्ग हैं।

परमानंद सेन (कवि कर्णपुर मुरारी गुप्त की कृति से प्रेरित हुए थे) और उन्होंने चैतन्य चरितामृत से मुक्त रूप में सामग्री ग्रहण की है। किंतु कवि कर्णपुर का काव्य, काव्यात्मक महिमा की दृष्टि से अधिक विशिष्ट है और यह अधिक महत्वाकांक्षी कृति भी है। यह काव्य बीस ही सर्गों में समाप्त हो गया है लेकिन यह मुरारी गुप्त की कृति के जितना ही बड़ा है। कवि कर्णपुर ने प्रथम दस सर्गों में चैतन्य के संन्यास पूर्ण जीवन का वर्णन किया है और अन्य दस सर्गों में उनके शेष जीवन का वर्णन किया है।

कवि कर्णपुर की कृति **चैतन्य चंद्रोदय** शीर्षक नाटक उनके काव्य से अधिक विख्यात था। यह भी गुरु का जीवनचरित ही था यद्यपि नाटक के रूप में लिखा गया था। दस अंगों में रचित **चैतन्य चंद्रोदय** में चैतन्य के जीवन की प्रमुख घटनाएं वर्णित हैं। यह कृति नाटक के रूप में लिखी गयी थी लेकिन यह निश्चित रूप से वास्तविक नाटक नहीं थी क्योंकि लेखक ने किसी नाटकीय गतिविधि के बगैर गुरु के आध्यात्मिक जीवन की प्रमुख घटनाओं और अनुभवों का वर्णन मात्र किया है। चरित्र-चित्रण भी स्तर के अनुरूप नहीं है किंतु लेखक ने गुरु के जीवन को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक की प्रस्तावना में लेखक ने सूत्रधार के माध्यम से यह कहा है कि यह नाटक राजा गजपति प्रताप रुद्र के आदेश से पुरी में जगन्नाथ के रथ-यात्रा उत्सव के दौरान खेला जा रहा है।

रूप गोस्वामी की नाट्य कृतियां भिन्न प्रकार की थीं और उन्हें अधिक गंभीर रचनाएं माना जाता है किंतु रूप गोस्वामी की नाट्य कृतियां चैतन्य-लीला से संबंधित नहीं थीं। उनमें केवल कृष्ण-लीला का वर्णन था। वृंदावन के गोस्वामियों की कृतियों का मुख्य विषय कृष्ण-लीला ही है। इस तरह रूप की नाट्य कृतियों के विषय ऐतिहासिक नहीं दंतकथात्मक थे। इनका अभिप्राय वैष्णव मत की तत्व विद्या की महिमा बखान कर, उसे गरिमा-मंडित करना था।

कृष्ण-राधा उपासना को नाटक के रूप में गौडीय वैष्णव मत की रोशनी में विवेचित किया गया था। इन नाटकों की रचना रस शास्त्र की भक्ति भावनाओं के अनुसार हुई थी।

रूप की तीन नाट्य कृतियों में से दान के लिए कौमुदी एक अंक में ही पूरी हो गयी है। इस नाटक में कोई गीत नहीं है और संवाद गद्य और कविता दोनों में हैं। रूप के नाटकों में यह सबसे छोटा है और इसका विषय भी बिलकुल गंभीर नहीं है। किंतु उनका **विदग्ध माधव** सात अंकों का रीति-बद्ध नाटक है। रूप गोस्वामी ने इस विस्तृत और नियमानुकूल नाटक में राधा और कृष्ण की संपूर्ण वृंदावन-लीला को प्रस्तुत कर दिया है। इस नाटिका में लेखक ने एक श्लोक में चैतन्य का अभिनंदन किया गया है। यह नाटक वृंदावन में मंच पर खेला गया था।

रूप गोस्वामी का तीसरा नाटक **ललित माधव विदग्ध माधव** से भी विस्तृत है और दस अंकों में पूरा हुआ है। इस नाटक में भी लेखक ने चैतन्य का अभिनंदन किया है। **ललित माधव** में कृष्ण के वृंदावन जीवन का ही नहीं बल्कि उनके मथुरा और द्वारिका में किए गये कृत्यों का भी वर्णन है। यह नाटक भी वृंदावन में राधा-कुंड स्थित माधव माधवी मंदिर में वैष्णव भक्तों के सामने खेला गया था। दीपावली पर्व के दौरान गिरि गोवर्द्धन की पूजा के अवसर पर इसका अभिनय हुआ था। रूप गोस्वामी के सभी नाटक कृष्ण-राधा की दंतकथा पर आधारित भक्ति के सिद्धांतों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। गौडीय वैष्णव भक्त रूप की इन कृतियों को इनके काव्यात्मक चमत्कार के कारण नहीं बल्कि इनके भक्ति-तत्व के कारण बहुत ऊंचा स्थान देते हैं।

चैतन्य मत द्वारा प्रेरित नाट्य रचनाओं की ही तरह संस्कृत काव्य रचनाएं भी कृष्ण-लीला पर आधारित हैं। वृंदावन में कृष्ण-लीला की घटनाएं गौडीय वैष्णव लेखकों द्वारा रचित संस्कृत कविता का विशेष विषय थीं। कारण यह था कि ये काव्य चंपू आदि नाटकों की ही तरह वैष्णव भक्ति आंदोलन के एक विशेष दौर को अभिव्यक्त करने के लिए रचे गये थे। धार्मिक भावनाओं में मानव स्वभाव की भावनात्मक और सौंदर्यात्मक भावनाओं से संबद्ध मानव-तत्व व्याप्त था। मध्यकाल की धार्मिक भक्ति में एक नयी भावात्मक वस्तु का विनियोग था।

गौडीय वैष्णव के भक्तिपरक संस्कृत काव्य का विषय सामान्यत: रूमानी मोहकता

और गीतात्मक उद्रेक दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण और राधा की वृंदावन लीला सर्वाधिक प्रचलित विषय बन गई। रूप रघुनाथदास, कवि कर्णपुर, जीव गोस्वामी, कृष्णदास कविराज और अन्यों के चंपू तथा काव्य कृतियां इसके उदाहरण के रूप में उल्लिखित हो सकते हैं। रूप की नाट्य कृतियां कवि कर्णपुर कृत **आनंद वृंदावन चंपू** और **कृष्णनानिक कौमुदी** जीव गोस्वामी के **गोपाल चंपू** और **माधव महोत्सव** कृष्णदास कविराज कृत **गोविंद-लीलामृत** प्रबोधानंद सरस्वती कृत **संगीत माधव** आदि सभी अपनी अपनी तरह से कृष्ण और राधा की वृंदावन लीला पर आधारित हैं।

गौडीय वैष्णव लेखकों ने कृष्ण की वृंदावन लीला की उद्भावना वस्तुत: सार रूप में नित्य लीला के ही रूप में की थी। वे शिशु और किशोर कृष्ण को ही भक्ति का परम लक्ष्य मानते थे।

मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में जीवनचरित, काव्य और नाटक के अतिरिक्त वैष्णव स्तोत्र और गीत भी महत्वपूर्ण कृतियां हैं। चैतन्य के अनुयायियों द्वारा रचे गये वैष्णव स्तोत्रों में तीव्र भावनात्मकता और शृंगारिक रहस्यात्मक तत्व परिलक्षित होता है। वैष्णव भक्ति आंदोलन के ये स्तोत्र इस संबंध में परिपाटीगत स्तोत्रों से अलग हैं।

राधा-कृष्ण कथा तत्व ने चैतन्य संप्रदाय के भक्तों द्वारा रचित भक्ति-परक वैष्णव स्तोत्रों को एक नयी दिशा दी। गौडीय वैष्णव मत के रमणीय और कलात्मक स्त्रोत्र प्राय: उसी कवि मंडली द्वारा रचित विस्तृत काव्यों की तुलना में अधिक लघु रचनाएं थीं। इनमें से अनेक स्तोत्र वैष्णव भक्तों के बीच लोकप्रिय हुए। चूंकि ये स्तोत्र उनके धार्मिक विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करते थे इसलिए वे इनका नियमित पाठ किया करते थे।

अन्यत्र कहा जा चुका है कि वृंदावन के गोस्वामी चैतन्य को सर्वोच्च ईश्वर या सशरीर ईश्वर नहीं मानते थे; उनके अनुसार कृष्ण ही सर्वोच्च ईश्वर थे। वे चैतन्य को कृष्ण की तरह ही अवतार अवश्य मानते थे। वे अपनी तत्व विद्या परक कृतियों में प्रधानत: कृष्ण-लीला का ही विवेचन करते हैं और चैतन्य लीला का उसी रूप में उल्लेख नहीं करते। उन्होंने चैतन्य के दिव्य व्यक्तित्व का अभिनंदन अवश्य किया लेकिन नवद्वीप और उड़ीसा में जिस तरह की गुरु पूजा प्रचलित थी वह वृंदावन के गोस्वामियों में दृष्टिगोचर नहीं होती।

रघुनाथदास की **स्तवावली** में भी चैतन्य का उल्लेख है। यह स्मरणीय है कि वृंदावन के गोस्वामियों में रघुनाथदास ही गुरु के सर्वाधिक निकट थे क्योंकि वे पुरी में गुरु के साथ सोलह वर्षों तक रहे थे। रघुनाथदास की **स्तवावली** के प्रथम दो स्तोत्र प्रत्यक्षत: चैतन्य से संबंधित हैं। कवि ने प्रथम स्तोत्र में एक उद्घाटनकारी बात कही है। रघुनाथ ने लिखा है कि एक बार कृष्ण दर्पण में दीख रहे अपनी ही सुंदर छवि के प्रेम में पड़ गये। उनकी इच्छा हुई कि जिस तरह राधा उनका सुख पाती हैं उसी तरह वे

स्वयं अपना सुख पायें। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कृष्ण गांडा में राधा के गौरवर्णीय एक ही अविभाज्य शरीर में उत्पन्न हुए जो शरीर उनका स्वयं का भी था।

रघुनाथदास ने स्वकृत **गौरांग स्तव कल्पतरु** में पुरी में काशीश्वर मिश्र के घर में चैतन्य के भक्ति-जीवन का वर्णन किया है। इसमें गुरु का महान भक्त के रूप में वर्णन है।

चैतन्य मत के इस काव्यात्मक और भावनापरक संस्कृत स्तोत्र साहित्य में प्रबोधानंद सरस्वती कृत **चैतन्य चंद्रामृत** का भी उल्लेख होना चाहिए। चैतन्य के महिमा गान के रूप में रचित यह रचना अपने कुछ परिपाटी विरुद्ध विचारों के कारण वैष्णव आचार्यों की सहमति नहीं प्राप्त कर सकी। फिर भी प्रबोधानंद की यह कविता तीव्र भावनात्मक आकर्षण वाली उल्लेखनीय रचना है।

इसी कवि की एक अन्य कृति **वृंदावन महिमामृत** भी वैष्णव भक्तों के बीच लोकप्रिय थी। इन विस्तृत शतकों में प्रबोधानंद ने कृष्ण के आवास और कृष्ण-लीला के स्थान वृंदावन के रागात्मक संबंधों का उन्मुक्त वर्णन किया है।

रुप गोस्वामी की स्तोत्र, गीत और बिरुद रचनाओं को उनके भ्रातृज जीव गोस्वामी ने एक ही पुस्तक **स्तव माला** में संग्रहीत किया। ये रघुनाथदास और अन्य संस्कृत वैष्णव कवियों की रचनाओं से भिन्न प्रकार की थीं। रूप गोस्वामी की इन कृतियों में से अधिकांश में कृष्ण और राधा की वृंदावन में हुई विविध प्रकार की लीलाओं का वर्णन है। केवल प्रारंभ के तीन अष्टक चैतन्य के संबंध में हैं। रूप की इन रचनाओं की साहित्यिक शैली में अलंकरण, सौंदर्य और समृद्ध भाषा मिलती है। अधिकांशत: छोटे आकार के ये स्तोत्र गीतात्मक गुणों और श्रुति-मधुर तुकों वाले हैं।

सामान्यत: बिरुद काव्य को गद्य अथवा पद्य में राजाओं के सम्मान में लिखी गई प्रशंसा माना जाता था। परंतु बंगाल का वैष्णव बिरुद काव्य देवों की प्रार्थना और स्तुतिपरक था। यद्यपि इनकी रचना एक खास तरह के गद्य या पद्य में होती थी। गौडीय बिरुद काव्य की साहित्यिक रचना में यह मौलिकता मुख्यत: रूप गोस्वामी के कारण आई। उन्होंने ही इसे विकसित किया।

कवि विद्वान रूप गोस्वामी ने **सामान्य बिरुदावली लक्षण** नामक एक विस्तृत ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में उन्होंने बिरुदावली रूप में कोई पचास प्रकार की सोदाहरण परिभाषा दी है। बाद में वल्लभ विद्याभूषण ने **गोविंद बिरुदावली** टीका में रूप गोस्वामी के इस ग्रंथ के विस्तृत उद्धरण दिये हैं। जीव गोस्वामी ने इसके अनुकरण में **गोपाल बिरुदावली** की रचना की। उन्होंने स्वकृत **गोपाल चंपू** के अंतिम अध्याय में कुछ बिरुद स्तोत्रों का समावेश किया।

रूप गोस्वामी ने गोविंद बिरुदावली में इस रूप के लगभग समग्र 49 प्रकारों में पद रचकर एक असाधारण साहित्यिक कार्य कर दिखाया।

संक्षेप में रूप गोस्वामी के स्तोत्रों, बिरुदों के वर्णनात्मक भागों में न केवल सजीव चित्रात्मकता थी, ये मूलत: भावात्मक भक्ति पर आधारित थे। इनके आलंकारिक प्रगीतात्मक और संगीतात्मक गुण भी उल्लेखनीय हैं। कवि के स्तोत्र और गीत उनकी विद्वत्ता भक्ति और साहित्यिक प्रतिभा की अभिव्यक्ति थे जबकि रघुनाथदास की रचनाएं कम कलात्मक थीं किंतु साथ ही उनमें रचनाकार के सरल निष्ठावान व्यक्तित्व का आत्म स्पर्श था।

गौडीय वैष्णवों के संस्कृत साहित्य के विषय में इस संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने के पहले रूप गोस्वामी के **पद्यावली** शीर्षक संग्रह ग्रंथ का भी उल्लेख करना चाहिए। यह प्राचीन और नवीन वैष्णव भक्तिपरक पदों का संग्रह था। गौडीय वैष्ण मत की भक्ति उपासना के चित्रण के लिए यह संग्रह संकलित किया गया था। इस पुस्तक में संग्रहीत सारे पद कृष्ण-लीला विषयक थे और कृष्ण से संबंधित विभिन्न घटनाओं और कृष्ण-भक्ति के विभिन्न पक्षों के अनुसार इन्हें संग्रहीत किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौडीय वैष्णव रस शास्त्र के आलंकारिक वर्गीकरण के अनुरूप ही ये पद व्यवस्थित किये गये थे। इस संग्रह ग्रंथ का प्रधान मूल्य कृष्ण संबंधित विविध प्रकार के पदों के संग्रह में निहित है। इस अपूर्व संग्रह का उद्देश्य कृष्ण-भक्ति से संबंधित भावात्मक भक्ति के विभिन्न पक्षों का विवेचन करना था।

काव्य, नाटक, स्तोत्र, बिरुद, चंपू, गीत आदि रूपों की सभी कृतियों को एक साथ लेने पर प्रतीत होता है कि चैतन्य मत ने संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक उल्लेखनीय युग का सूत्रपात किया।

किंतु चैतन्य मत का मध्यकालीन बांग्ला साहित्य पर और भी अधिक गौरवशाली प्रभाव पड़ा।

चैतन्य के सहयोगियों और अनुयायियों द्वारा बांग्ला भाषा में विशाल मात्रा में रचित साहित्य का वर्णन एक अध्याय में पूरा नहीं किया जा सकता। यह काफी बड़ा विषय है।

चैतन्य मत के कारण ही मध्यकालीन बांग्ला साहित्य में गीतों और जीवनचरितों की रचना प्रारंभ हुई। इन दोनों विधाओं ने मध्य युग में बांग्ला साहित्य को खूब समृद्ध किया। बांग्ला के सर्वश्रेष्ठ जीवनचरित ग्रंथ इसी युग में लिखे गये। चैतन्य मत से प्रेरित होकर वैष्णव कवियों द्वारा रचे गये मधुर और मोहक गीत न केवल नये थे बल्कि मध्यकालीन बांग्ला साहित्य की मूल्यवान मणियां माने जाते हैं।

चैतन्य मत के प्रभाव में रचित होने वाले क्षेत्रीय साहित्य की गीत और जीवनचरित — इन दो नयी साहित्यिक विधाओं में से प्रथम में रचना पहले शुरू हुई। चैतन्य का कोई जीवन चरित संस्कृत या बांग्ला में लिखा जाये इसके पूर्व ही उनके ऊपर अनेक कविताएं रची गयी थीं। यह गुरु की नवद्वीप-लीला के समय हुआ था। वह गया से

पूर्णतः परिवर्तित और आध्यात्मिक रूप में नवजीवन प्राप्त मनुष्य बनकर नवद्वीप लौटे थे । कोई चार महीनों तक वे किसी तरह अपना पढ़ाने का काम निभाते रहे । किंतु उसके बाद नवद्वीप में अपने आवास के अंतिम भाग में अर्थात कोई आठ महीनों में उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व उभरा ।

उनकी धार्मिक चरम भाव-विह्वलता, रहस्यानुभूति और मनोहर कीर्तन और उन्मत्त भक्तिपरक नृत्य से आकृष्ट होकर नवद्वीप और निकटस्थ कटवा, श्रीखंड, कुलीनग्राम, कांचनपल्ली आदि के भक्तगण चैतन्य के आस पास एकत्रित होने लगे ।

उन्हें उनकी मंडली में सम्मिलित होकर और इन्हें निकट से देखकर यह विश्वास हो गया कि कृष्ण ने ही भगवान गौरांग (चैतन्य) के रूप में जन्म लिया है । चैतन्य के तत्कालीन जीवन की घटनाओं से भक्तगण इतने प्रभावित हुए कि उनमें से कुछ ने गुरु के संबंध में गीतों की रचना की । उनका उत्कृष्ट आध्यात्मिक व्यक्तित्व और सुंदर वर्ण इन रचयिताओं के लिए सजीव विषय बन गया ।

चैतन्य पर बांग्ला में पद रचना करने वाले शुरू के लोगों में श्रीखंड के नरहरि सरकार एक थे । नरहरि सरकार के एक पद से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि चैतन्य के जीवनचरितों के लिखे जाने से पहले से ही उन पर गीतों की रचना होने लगी थी । नरहरि ने इस पद में लिखा है : "गौर की लीलाओं को देखकर मैं इन सबको भाषा में निबद्ध कर लेना चाहता हूं । मैं ऐसा छोटा प्राणी हूं कि मुझे लिखना भी नहीं आता फिर मैं उसके विषय में लिखूंगा कैसे । ऐसी पुस्तक के रचयिता का अभी जन्म ही नहीं हुआ । यदि यह पुस्तक भाषा में लिखी गयी तो सभी लोग इसे समझेंगे । गौर-गदाधर की लीलाएं पत्थरों को पिघला देती हैं । कौन इसका वर्णन कर पायेगा ?...मैं कुछ पदों की रचना कर रहा हूं । इन्हें देखकर हो सकता है कोई गुरु की लीलाओं का वर्णन करे... ।"

उपर्युक्त पद में नरहरि ने चैतन्य के विषय में 'भाषा' में लिखने का उल्लेख किया है जिसका अभिप्राय क्षेत्रीय भाषा या बांग्ला भाषा से था । प्रसंगवश यह भी स्मरणीय है कि गुरु के नवद्वीप के भक्तों ने तब तक यह निश्चित कर लिया था कि चैतन्य की लीलाओं के विषय में मुरारी गुप्त संस्कृत में लिखेंगे । किंतु कोई भी समकालीन व्यक्ति गुरु के आध्यात्मिक जीवन का उपयुक्त वर्णन नहीं कर पायेगा । नरहरि ने इस विश्वास से यह कहा — "ऐसी पुस्तक की रचना करने वाले का अभी जन्म ही नहीं हुआ" और यह भी सोचा — 'यदि यह भाषा (अर्थात मातृभाषा बांग्ला) में लिखी जाये तो सभी लोग समझ सकेंगे ।"

चैतन्य के अन्य समकालीनों में नवद्वीप के वंशीवादन और मुरारी गुप्त, कांचनपल्ली के शिवानंद सेन और उनके पुत्र परमानंद का विकर्णपुर कटवा के निकट कोलई ग्राम के तीनों भाई वासुदेव घोष, गोविंद घोष और माधव घोष तथा कुलिन ग्राम के रामानंद बसु में काव्य प्रतिमा दृष्टिगोचर हुई और ये चैतन्य के जीवन की खुद देखी

घटनाओं पर पद रचकर प्रसिद्ध हो गये ।

भगवान गौरांग पर गीत रचने वालों में नौ अग्रणी पद-कर्ताओं को सबसे विशेष माना जाता था और विद्वानों की राय रही है कि इनके द्वारा वर्णित घटनाओं को सच्चा आंखों देखा विवरण माना जा सकता है ।

इन नौ अग्रणी गीता रचयिताओं के अलावा अनेक अन्य समकालीन कवियों ने गुरु के दैनिक जीवन के बारे में पद लिखे हैं । इनके **पद कल्प-तरू** और **गौर पद तरंगिणी** शीर्षक से चैतन्यपरक गीतों के आधिकारिक और विस्तृत संग्रहों में संकलित किये गये । चैतन्य के इन समकालिक पद-कर्ताओं के नाम हैं : अनंत आचार्य, अनंत दास, उद्धवदास, कंद ठाकुर, गोपाल भट्ट, गोविंद आचार्य, गौरीदास, चंद्रशेखर, धनंजय पंडित, नयन मिश्र, परमानंद गुप्त, परमेश्वरदास, पुरुषोत्तमदास, बलरामदास, वृंदावनदास, जदु, जदुनाथ चक्रवर्ती, जदुनाथ, रघुनाथदास, रामानंद राया, शंकर घोष, सुलोचन, हरिदास द्विज ।

नरहरि सरकार अन्य समकालिकों द्वारा रचित पदों में सुंदर गीतात्मक गुण ही नहीं थे, उनका ऐतिहासिक मूल्य भी था । नरहरि सरकार ने सर्वप्रथम गुरु पर गीत लिखे इसकी पुष्टि एक अन्य समकालिक कवि वासुदेव घोष ने की है । नरहरि चैतन्य से आयु में कुछ बड़े थे और अपनी गायन प्रतिभा तथा सेवा-भाव के कारण नवद्वीप में गुरु के प्रिय पात्र संगी थे ।

प्रसंगवश यहां यह उल्लेखनीय है कि नरहरि गौर-नागरी सिद्धांत के प्रवर्तक थे ।

नरहरि सरकार की तरह शिवानंद सेन और वासुदेव घोष जैसे अन्य समकालिक अग्रणी पद-कर्ताओं ने चैतन्य की स्तुति में मधुर पदों की रचना की । उनके अनुसार चैतन्य सशरीर कृष्ण थे ।

वासुदेव घोष भी चैतन्य के गया से नवद्वीप वापस आने के बाद के घनिष्ठ सहयोगियों में से थे । बसु, गोविंद और माधव तीनों भाई उस समय तक नवद्वीप आ गये थे और गुरु के दिव्य जीवन पर गीतों की रचना करने लगे थे । तीनों में से बसु सर्वोत्तम पद-कर्ता थे और उन्होंने अन्य दोनों से अधिक विपुल रचना की । बाद में तीनों भाई यदा-कदा चैतन्य से मिलने पुरी जाते थे ।

प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों यथा **श्री चैतन्य चरितामृत** (काव्य), **श्री चैतन्य चंद्रोदय** (नाटक), **आनंद वृंदावन चंपू** आदि के लेखक परमानंद सेन, कवि कर्णपुर चैतन्य पर बांग्ला भाषा में गीतों के भी रचयिता थे । **गौर पद तरंगिणी** नामक संग्रह में उनके द्वारा रचित 10 पदों को संग्रहीत किया गया है ।

इन पदों के अध्ययन से इस बात का कुछ अनुमान हो सकता है कि पद-कर्ता चैतन्य के प्रति किस तरह का सम्मान-भाव रखते थे ।

बाद में मध्यकालीन बांग्ला साहित्य के क्षेत्र में कई अन्य गीतकार प्रकट हुए । इनमें

से कुछ गोविंददास और ज्ञानदास जैसे उत्कृष्ट और प्रतिभावान कवि भी थे । वैष्णव पद-कर्ताओं की रचनाओं से तत्कालीन बांग्ला साहित्य इतना समृद्ध हुआ कि इसके इतिहास में इसे गौरवमय युग माना जाता है । उत्कृष्ट गीतात्मक गुण के कारण वैष्णव पदों को मध्यकालीन बांग्ला काव्य साहित्य के रत्न माना जाता है ।

मुरारी गुप्त और परमानंद कवि कर्णपुर द्वारा रचित संस्कृत जीवनचरितों की प्रेरणा से चैतन्य के बांग्ला में जीवनचरित लिखे जाने लगे ।

बाद में बांग्ला में इतने अधिक लेखकों ने चैतन्य के इतने विशाल और इतने अधिक जीवन चरित लिखे कि आगे चलकर संस्कृत भाषा में लिखे गये जीवनचरित पृष्ठभूमि में विलीन हो गये । चैतन्य के बांग्ला जीवनचरितों को भी साहित्यिक मूल्यों के कारण मध्यकालीन भाषा-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियां माना जाता है ।

शुरू में ही यह याद रखना चाहिए कि बांग्ला में ये सारे जीवनचरित काव्य रूप में लिखे गये थे । मध्यकाल में इसी का प्रचलन था ।

सर्वश्रेष्ठ जीवनचरित और साथ ही बांग्ला साहित्य की श्रेष्ठतम रचनाओं में से एक कृष्णदास कविराज कृत **चैतन्य चरितामृत** है । कृष्णदास इस उत्कृष्ट कृति के विवरण के पूर्व चैतन्य के वृंदावनदास रचित जीवनचरित का उल्लेख होना चाहिए ।

वृंदावनदास रचित **चैतन्य भागवत** बांग्ला भाषा में गुरु का सर्वप्रथम जीवनचरित है विद्वानों की राय है कि वृंदावनदास ने चैतन्य के निधन के 15 वर्ष के भीतर ही इस जीवन चरित को पूर्ण कर लिया था ।

जहां तक गुरु के जीवन के प्रथम भाग के विवरण का संबंध है **चैतन्य भागवत** को सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवनचरित माना जा सकता है । वृंदावनदास ने इसकी रचना नित्यानंद के आदेश पर की थी ।

पुस्तक का मूल शीर्षक **चैतन्य मंगल** था किंतु वृंदावन के गोस्वामियों ने इसे परिवर्तित करके **चैतन्य भागवत** कर दिया । पांडुलिपि को वृंदावन के गौडीय वैष्णव अधिकारियों के पास सम्मति के लिए भेजा गया था । गोस्वामी लोग इससे संतुष्ट हुए और इसको स्वीकृति दी । साथ ही वृंदावन दास की कृति में श्रीकृष्ण के बाल्य-काल और चैतन्य के बाल्य-काल में सुंदर समानता पर मुग्ध होकर वृंदावन के गोस्वामियों ने **चैतन्य मंगल** शीर्षक बदल कर **चैतन्य भागवत** शीर्षक रखने का सुझाव दिया । कहा जाता है कि वृंदावनदास अपनी रचना में **श्रीमद्भागवत** से ही मुख्यत: प्रेरित हुए थे ।

बंगाल के चैतन्य मतानुयायी समुदाय में **चैतन्य भागवत** को सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक कृति माना जाता है । वृंदावनदास ने चैतन्य और नित्यानंद के भी धार्मिक जीवन का सरल और चित्ताकर्षक भाषा में वर्णन किया है । उन्होंने चैतन्य में अपनी आस्था से ही प्रेरित होकर इस स्मरणीय कृति की रचना की ।

ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वृंदावनदास ने कभी स्वयं गुप्त को देखा था । लेकिन

उनका जन्म और लालन-पालन चैतन्य मत के जीवंत परिवेश में हुआ । वे श्रीवास (चैतन्य के नवद्वीप स्थित घनिष्ठ अनुयायी जिनके घर में चैतन्य आंदोलन के आरंभिक चरणों में अपने अनुयायियों से मिला करते थे) के एक भाई की पुत्री नारायणी के पुत्र थे । गुरु की नवद्वीप-लीला से उनका प्रांगण ऐतिहासिक बन गया ।

वृंदावनदास ने अपनी माता नारायणी के विषय में लिखा है कि चार वर्ष की आयु में उन्होंने चैतन्य के भोजन का उच्छिष्ट ग्रहण किया था । कहा जाता है कि चैतन्य ने वृंदावनदास की मां के प्रति भक्ति भाव दिखाया था । नारायणी नित्यानंद की शिष्या थीं । नित्यानंद नारायणी के चाचा श्रीवास के घर में कुछ दिनों तक रहे थे ।

अपनी मां की तरह वृंदावनदास भी नित्यानंद के ही शिष्य थे । वे नित्यानंद के विश्वासपात्र अनुयायी थे और उन्होंने उनके निर्देश पर चैतन्य के जीवनचरित की रचना की । गुरु के जीवन से संबंधित घटनाओं के वर्णन में वृंदावनदास अधिकांशत: नित्यानंद पर निर्भर रहे । नित्यानंद ने ही उन्हें सामग्री दी ।

चैतन्य भागवत में अनेक दैवी विवरण हैं फिर भी चैतन्य के आरंभिक जीवन और अनेक समकालीन घटनाओं के लिए भी यह ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में मूल्यवान है ।

कहा जाता है कि वृंदावनदास ने इस जीवनचरित की रचना बर्दवान जिले के देनूर नामक गांव में की । वहां पर उनका श्रीपत है ।

बचपन से ही वृंदावनदास नित्यानंद से परिचित थे । विशाल **चैतन्य भागवत** की रचना शुरू करने के पहले उन्होंने पर्याप्त विद्वत्ता अर्जित कर ली थी । उन्होंने **श्रमद्भागवत** का पूर्ण परायण किया तो और उससे बहुत कुछ ग्रहण किया । उन्होंने कुछ पुराणों, महाभारत और अन्य संस्कृत ग्रंथों के उद्धरण दिये हैं ।

वृंदावनदास केवल विद्वान ही नहीं थे संगीत में भी कुशल थे । उन्होंने स्वरचित गानों को राग-बद्ध किया है । **चैतन्य भागवत** के भी अवलोकन से यह बात ज्ञात होती है ।

वृंदावनदास ने अपने जीवनचरित की रचना के लिए नित्यानंद के अतिरिक्त चैतन्य के एक अन्य घनिष्ठ संगी जलाधर पंडित से भी सामग्री एकत्रित की ।

चैतन्य भागवत तीन खंडों में है । प्रथम खंड में चैतन्य के गया-गमन तक का जीवन है । द्वितीय खंड उनके संन्यास ग्रहण से समाप्त होता है । अंतिम खंड में गुरु के जीवन के शेष भाग का वर्णन है ।

इस पुस्तक में वृंदावनदास की काव्य प्रतिभा के प्रभूत परिमाण का पता चलता है । उन्होंने कवि की सूझ से चैतन्य के आध्यात्मिक जीवन का वर्णन किया है । उन्होंने चैतन्य के प्रभाव से बने हुए भक्तिपरक परिवेश का प्रामाणिक चित्रण किया है । उन्होंने अपनी पुस्तक में कवि के रूप में चैतन्य की दैवी भक्ति का जो चित्र खींचा है उसके कारण वे

चैतन्य के अनुयायियों के अत्यंत प्रिय पात्र हो गये ।

कुल मिला कर **चैतन्य भागवत** को सोलहवीं शताब्दी में बंगाल की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जिंदगी के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है । वृंदावनदास ने इस जीवनचरित की रचना सन 1584 के आसपास की थी ।

चैतन्य भागवत के बाद कालक्रम के अनुसार जयानंद-कृत **चैतन्य मंगल** का उल्लेख होना चाहिए । हमने चैतन्य के निधन के संबंध में इस कृति का उल्लेख किया था ।

जयानंद ने चैतन्य का यह जीवनचरित सन 1560 में लिखा । बंगाल के कट्टर वैष्णव समुदाय में इस पुस्तक को समर्थन नहीं मिला । उन्होंने जयानंद की पुस्तक को शायद इस कारण नहीं मान्य किया क्योंकि लेखक ने पुस्तक रचना में सामान्य वैष्णव रीतियों का अनुसरण नहीं किया था और उन्होंने गोस्वामियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार चैतन्य के धार्मिक मत का विवेचन भी नहीं किया था । साथ ही चैतन्य-लीला के वर्णनों में कोई ऐतिहासिक क्रमबद्धता भी नहीं थी । गुरु के जीवन के अनेक मान्य तथ्यों के संबंध में कुछ गलत कथन भी थे ।

इन सभी कारणों से जयानंद कृत **चैतन्य मंगल** चैतन्य के जीवन के तथ्यात्मक विवरण के रूप में निर्भर योग्य कृति नहीं हो सकती थी । किंतु इस पुस्तक में ऐसे अनेक तथ्य उल्लिखित हैं जो गुरु के अन्य जीवनचरितों में नहीं मिलते हैं । इस कारण और सोलहवीं शती में बंगाल की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के संबंध में सूचनाओं के एक स्रोत के रूप में भी जयानंद की पुस्तक का कुछ मूल्य है । इसके लेखक बर्दवान जिले के अमईपुर नामक गांव के निवासी थे । चैतन्य एक बार उस उस गांव में उनके पिता सुबुद्धि मिश्र के अतिथि रहे थे । तब जबकि गुरु पुरी से वृंदावन की तीर्थ-यात्रा के लिए रवाना हुए थे और गौड से वापस लौट रहे थे । चैतन्य के सुबुद्धि मिश्र के घर में अतिथि होने के समय जयानंद की माता रोदनीदेवी ने गुरु के लिए भोजन बनाया । उस समय जयानंद शिशु ही थे । जयानंद के पिता सुबुद्धि मिश्र चैतन्य के एक विश्वासपात्र अनुयायी और सहचर गदाधर के शिष्य थे । संभवत: स्वयं जयानंद भी गदाधर के ही शिष्य थे ।

जयानंद के **चैतन्य मंगल** के बाद बांग्ला भाषा में लिखा गया चैतन्य का जीवनचरित लोचनदास-कृत **चैतन्य मंगल** नाम की ही पुस्तक है ।

लोचनदास बर्दवान जिले के ही ग्राम के निवासी थे । वे कमलाकरदास और सदानंदी के पुत्र थे । उन्होंने अपने मामा पुरुषोत्तमदास से शिक्षा ग्रहण की । लोचनदास प्रसिद्ध भक्तिपद-कर्ता और चैतन्य अनुयायी श्रीखण्ड के नरहरि सरकार के शिष्य थे ।

वह विद्वान पुरुष थे और संस्कृत भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के बाद शास्त्रों का

अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में अनेक संस्कृत ग्रंथों के उद्धरण दिये हैं। लोचनदास ने **चैतन्य मंगल** की रचना में मुरारी गुप्त द्वारा चैतन्य पर संस्कृत में रचित ग्रंथ का अनुसरण किया है। लेकिन लोचनदास की काव्य प्रतिभा के स्पर्श से उनकी कृति में विशेष आकर्षण आ गया है।

लेखक स्वयं बांग्ला में भक्तिपरक पदों के रचयिता थे। उनके जीवनचरित में भी विशेष गीतात्मक गुण हैं। चैतन्य मत के गायकों ने **चैतन्य मंगल** का उपयोग किया इससे उनकी कृति की संगीतात्मक उत्कृष्टता की पुष्टि होती है।

किंतु चैतन्य के जीवनचरित के रूप में लोचनदास की पुस्तक में चैतन्य के निधन से संबंधित एक बात को छोड़कर गुरु के जीवन के विषय में और कोई नई सूचना नहीं मिलती।

डा. बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार लोचनदास ने इस पुस्तक की रचना 1560 और 1566 के बीच की। **चैतन्य मंगल** चार भागों में विभाजित है। कुल मिलाकर लोचनदास की कृति ऐतिहासिक होने की अपेक्षा अधिक काव्यात्मक है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि स्वरूप दामोदर पंच-तत्व के जन्मदाता थे जिसके द्वारा चैतन्य, नित्यानंद, अद्वैत आचार्य, गदाधर और श्रीवास को मत के पांच तत्वों के रूप में स्थापित किया गया था। लोचनदास के मत के विषय में यह स्मरणीय बात है कि नरहरि सरकार के शिष्य के रूप में उन्हें पंच-तत्व का सिद्धांत स्वीकार था किंतु लोचनदास ने पंच-तत्वों में श्रीवास के स्थान पर अपने गुरु नरहरि सरकार को स्थापित किया। यह बात उनके **चैतन्य मंगल** के सूत्र खंड में अभिव्यक्त है। लोचनदास अपने गुरु नरहरि सरकार द्वारा प्रतिपादित गौर नागरी के सिद्धांत को भी लोक प्रचलित करना चाहते थे। इस दृष्टि से बंगाल में चैतन्य मत के इतिहास में **चैतन्य मंगल** का महत्व रहा है।

बांग्ला में चैतन्य का अगला जीवनचरित सुविख्यात कृष्णदास कविराज रचित प्रसिद्ध **श्री चैतन्य चरितामृत** थी। यह भक्तिपरक ग्रंथ भी है और इतिहासपरक भी। चैतन्य के जीवनचरित के रूप में यह पुस्तक महाकाव्य के आकार की थी और सर्वाधिक सर्वांगपूर्ण और महत्वपूर्ण थी। इस कृति ने विशेषकर चैतन्य के जीवन के अंतिम भाग के विषय में वृंदावनदास कृत **चैतन्य भागवत** की परिपूर्ति की।

भक्त विद्वान कृष्णदास कविराज ने इस विशाल जीवनचरित की रचना में वृंदावन के संन्यासी और विद्वान गोस्वामियों से प्रेरणा ग्रहण की। लेखक स्वयं रघुनाथदास गोस्वामी के शिष्य के रूप में भक्त जीवन व्यतीत करते थे।

कृष्णदास कविराज ने अत्यंत वृद्धवय में इस विशाल ग्रंथ का प्रणयन शुरू किया और सात वर्षों के बाद इसे पूरा किया। इसके अति उच्च साहित्यिक वैशिष्ट्य के अतिरिक्त निष्ठावान श्रम और धैर्य का अद्वितीय उदाहरण है।

लेखक को लोग सामान्यत: गौडीय वैष्णव मतवर्ती वृंदावन शाखा अनुयायी

कविराज गोस्वामी कहा करते थे । उनकी कृति **चैतन्य चरितामृत** न केवल चैतन्य की जीवनी थी वरन बंगाल के वैष्णव मत के तत्व विद्या का विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ भी थी । अस्तु इसे गौडीय वैष्णव पंथ का आधिकारिक ग्रंथ माना जाता था ।

यद्यपि गौडीय वैष्णव मत की तत्व-विद्या की विवेचना वृंदावन के गोस्वामियों ने संस्कृत में की थी तथापि संभवत: चलित भाषा में उस पंथ के बारे में यह एकमात्र प्रामाणिक रचना थी । इस प्रतिभाशाली कृति में काव्यात्मक शक्ति और विद्वता का अद्भुत समन्वय था ।

कृष्णदास कविराज ने अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना की । परंतु उनके **चैतन्य चरितामृत** ने उन्हें अमर कर दिया । बांग्ला साहित्य की उत्कृष्टतम कृतियों में से यह एक है । चैतन्य (जिनका जीवन उनकी आंतरिक आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति ज्यादा थी बनिस्बत बाह्य उल्लेख्य घटनाओं के) के चित्र का चित्रण जिस विशिष्ट रीति से लेखक ने किया है उससे कवि की प्रतिभा का अंदाजा लगता है । उनकी नाजुक भावनाओं के उद्घाटन में कुशलता, उनका भाषा पर अधिकार, उनकी इतनी बड़ी कृति में समान रूप से उच्चतर बनाये रखने की क्षमता – ये समस्त गुण लेखक की साहित्यिक विदग्धता को प्रमाणित करते हैं ।

साथ ही **चैतन्य चरितामृत** में गुरु के जीवन के प्रस्तुतीकरण के अलावा गौडीय वैष्णव मत की संपूर्ण तत्व विद्या भी आ गयी है । लेखक ने स्वयं वृंदावन के गोस्वामियों के चरणों में रहकर वैष्णव मत की तत्व विद्या का अध्ययन किया था । वह गोस्वामियों (खासकर रघुनाथदास) के शिष्य थे और उन्होंने मध्यकालीन बांग्ला साहित्य की इस महान कृति के माध्यम से गौडीय वैष्णव तत्व विद्या का प्रचार किया । कहने की आवश्यकता नहीं कृष्णदास कविराज द्वारा उपदिष्ट तत्व विद्या वही थी जो उनके शिक्षा-गुरुओं, वृंदावन के गोस्वामियों द्वारा प्रतिपादित की गयी थी । निस्संदेह अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने जब इस ग्रंथ की रचना की, संभवत: तब तक छह प्रमुख गोस्वामी जीवित नहीं थे ।

उनके ग्रंथ के विषयवस्तु और इसके अन्य प्रासंगिक पहलुओं के वर्णन के पूर्व कविराज गोस्वामी के जीवन के बारे में एक संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है ।

लेखक के व्यक्तिगत जीवन के बारे में बहुत अल्प सूचनाएं प्राप्त हैं क्योंकि वैष्णव विनय की वजह से वे अपने बारे में कुछ नहीं बोले । यद्यपि वे गहन विद्वान थे, उनका विनय आदर्श है । कहा जाता है कि 'वैष्णव विनय' शब्द उन्हीं के उदाहरण से प्रसिद्ध हुआ । उन्होंने अपने विषय में यह लिखा है – 'मैं जगाई और मधाई से भी बड़ा पापी हूं... । मेरा नाम लेना पाप है ।'

उनके जीवन के विषय में उपलब्ध अल्प सामग्री से यह पता चलता है कि कृष्णदास बर्दवान जिले में में कटवा के निकट झामटपुर नामक गांव में पैदा हुए थे । उनके पिता

का नाम भागीरथ और माता का नाम सुनंदा था। शिशुवय में ही कृष्णदास मातृ-पितृ-विहीन हो गये । उनका मूल नाम संभवत: कृष्णदास नहीं था । बाद में दीक्षा के समय उन्हें यह नाम मिला । कृष्णदास ने युवावस्था में संन्यासी जीवन बिताने के लिए गांव-घर का त्याग कर दिया । **चैतन्य चरितामृत** के प्रथम खंड में उन्होंने स्वयं यह कहा है कि नित्यानंद ने उन्हें स्वप्न में वृंदावन जाने के लिए उत्प्रेरित किया था ।

उसके बाद कृष्णदास भक्त और शिक्षार्थी के रूप में दिनयापन करने के लिए वृंदावन चले गये । यहां उन्हें विद्वान गोस्वामियों के समाज में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और कालांतर में उनके शिक्षण से वह स्वयं गहन विद्वान हो गये । अपने **चैतन्य चरितामृत** के प्रथम खंड में कृष्णदास ने वृंदावन के गोस्वामियों को अपना शिक्षा-गुरु स्वीकार किया है । अपनी पुस्तक के प्रत्येक अध्याय के अंत में लेखक ने रूप गोस्वामी और रघुनाथदास गोस्वामी का विशेष अभिनंदन किया है। रघुनाथदास ने ही उन्हें संन्यास की दीक्षा दी थी ।

कृष्णदास संस्कृत के अच्छे विद्वान थे । उनकी उपरोक्त कृति से यह बात समझ में आ जाती है कि वे प्रमुख गोस्वामियों की तत्व विद्या परक रचनाओं से पूर्णत: परिचित थे । उन्होंने अपने गुरु वृंदावन के गोस्वामियों द्वारा प्रतिपादित तत्व विद्या और रस शास्त्र के अनुसार ही चैतन्य के जीवन का वर्णन किया है । लेखक ने पुस्तक के प्रथम भाग में उल्लेख किया है कि उनकी अद्‌भुत बांग्ला कृति वृंदावन के वैष्णवों के विशेष अनुरोध पर लिखी गई थी ।

उन्होंने **गोविंद लीलामृत** और **सारंग रंगदा** जैसे अनेक संस्कृत ग्रंथों की भी रचना की है । उनकी जन्म-तिथि, **चैतन्य चरितामृत** की रचना-तिथि, उनकी मृत्यु-तिथि आदि की निश्चित जानकारी नहीं है । डा. बिमान बिहारी मजूमदार ने अपनी शोधकृति में कृष्णदास कविराज का जन्म सन 1527 निर्धारित किया है । डा. मजूमदार के अनुसार कृष्णदास सन 1557 के आसपास वृंदावन रहने के लिए गये और चैतन्य चरितामृत सन 1612 या सन 1615 में पूरी हुई । (डा. एस. के. डे. अनुसार कृष्णदास कविराज लगभग सन 1530 से सन 1616 तक रहे) ।

डा. मजूमदार ने यह भी प्रमाणित किया है कि वृंदावन जाने के पूर्व कृष्णदास कविराज ने बंगाल के वैष्णवों की रचनाओं का पारायण कर लिया था । क्योंकि मुरारी गुप्त की संस्कृत कृति **कवच** कवि कर्णपुर-कृत संस्कृत एक **श्री चैतन्य चंद्रोदय** और उनके संस्कृत महाकाव्य **श्री चैतन्य चरितामृत**, सभी की रचना सन 1557 के पूर्व हो चुकी थी । इसी वर्ष के आसपास कृष्णदास वृंदावन के लिए रवाना हुए । वहां पहुंचकर वे रूप, सनातन और अन्य गोस्वामियों के संपर्क में आ गये ।

तदुपरांत लगभग तीन वर्षों बाद कृष्णदास से भी कुछ अधिक 2,500 श्लोकों वाले **गोविंद लीलामृत** शीर्षक महान संस्कृत काव्य का प्रणयन किया । यह किसी वैष्णव

द्वारा प्रणीत परिमाण और गुण दोनों के लिहाज से अद्वितीय काव्य है। रघुनाथदास गोस्वामी ने अपनी संस्कृत कृति **मुक्ता चरित्र** के अंतिम श्लोक में उनकी प्रशंसा में उन्हें 'कवि भूपति' कहा है। डा. मजूमदार के अनुसार कृष्णदास को **गोविंद लीलामृत** पर ही 'कविराज' की उपाधि मिली थी।

कृष्णदास कविराज की **सारंग रंगदा** शीर्षक दूसरी संस्कृत कृति लीलाशुक कृत **श्रीकृष्ण कर्णामृत** की टीका थी।

उनकी अंतिम कृति बांग्ला की **चैतन्य चरितामृत** थी जो उनके दीर्घ विरक्त जीवन के क्लांत अंतिम दौर में लिखी गई। उन्होंने वृंदावन के वैष्णवों के अनुरोध पर इस ग्रंथ की रचना की और इसके पूरा होने में सात वर्ष लग गये।

कृष्णदास कविराज ने जब इस महाकाव्य कृति को पूरा किया तब तक वे 86 वर्ष की अवस्था में पहुंच चुके थे। कुछ ही काल बाद उनका निधन हुआ।

जहां तक चैतन्य के जीवनचरित की सामग्री का सवाल है, कृष्णदास ने मुरारी गुप्त, स्वरूप दामोदर, कवि कर्णपुर और वृंदावनदास की कृतियों का उपयोग किया। वृंदावन के अग्रणी गोस्वामियों के व्यक्तिगत संस्मरण उन्हें मिले। इस संबंध में वे खासकर अपने गुरु रघुनाथदास गोस्वामी जिन्हें पुरी में गुरु के साथ 16 वर्षों तक साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उन पर निर्भर रहे। उस कारण से चैतन्य के अंतिम दिनों से संबंधित **चैतन्य चरितामृत** का अंतिम अंश अत्यंत प्रामाणिक माना जाता है।

कृष्णदास की कृति तीन खंडों में विभक्त थी — **आदि, मध्य** और **अंत्य लीला**। इसमें 62 अध्यायों में गुरु के जीवन के तीन पक्ष ही पूरे हुए हैं। पहला भाग चैतन्य के संन्यास तक के आरंभिक जीवन से संबंधित था। दूसरे भाग में उनके छह वर्षों की तीर्थ-यात्रा के विवरण हैं। तीसरे भाग का विषय पुरी में उनका अंतिम 18 वर्ष का जीवन है। लेखक ने चैतन्य के उत्तरकालीन जीवन का विशद वर्णन किया है।

चैतन्य मत और आंदोलन के अध्ययन के लिए यह पुस्तक अपरिहार्य है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य के जीवनचरित के अतिरिक्त गौडीय वैष्णव मत के दर्शन और उसकी तत्व विद्या का भी बांग्ला में विवेचन किया। वृंदावन के गोस्वामियों ने इन विषयों पर संस्कृत में लिखा था। बंगाल के वैष्णवों के इन सिद्धांतों का प्रचार करने में यह बहुत सहायक सिद्ध हुई। इस वजह से इसे दुर्लभ्य गुणों वाली कृति माना जाता था।

कृष्णदास की पुस्तक के बाद अनेक अन्य जीवनचरितात्मक ग्रंथ — अधिकतर चैतन्य पर — बांग्ला भाषा में लिखे गये। परंतु वे कम महत्व के हैं, इसलिए यहां उनका विवेचन नहीं किया गया है।

बांग्ला साहित्य के क्षेत्र में चैतन्य मत के कारण एक अन्य उत्कृष्ट विद्या-गीत की भी रचना शुरू हुई। चैतन्य के समकालिक अनुयायियों ने पहले चैतन्य पर बांग्ला में गीत-रचना की। नरहरि सरकार और अन्य आठ समकालीन कवियों ने चैतन्य का वर्णन

करते हुए श्रुति-मधुर पदों की रचना की। अन्य प्रमुख नौ समकालीन गीत रचयिताओं का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

चैतन्य प्रेरित गीतात्मक रचनाओं का यह पहला या प्रारंभिक दौर था। गौडीय वैष्णव मत पर आधारित कलात्मक बांग्ला गानों और गीतों का वास्तविक सृजनशील युग, कुछ समय बाद आया।

बंगाल में कालांतर में वैष्णव पदावलियों के रूप में विपुल काव्यात्मक साहित्य रचा गया। बांग्ला साहित्य चैतन्यवाद के अनुयायी कवियों द्वारा रचित गीतों का आगार बन गया। बंगाल के कुछ महानतम कवि चैतन्य मतानुयायी पद-कर्ता थे।

चैतन्य के उदय के फलस्वरूप विकसित और प्रभूत मात्रा में रचित पद्यावली साहित्य बंगाल की साहित्यिक गतिविधियों के क्षेत्र में गौरवमय युग था। इस युग की समग्र सृजनात्मकता में चैतन्य मत अद्वितीय प्रेरणा स्रोत बना। उपासना और भक्ति और दैवी भावनाओं को रूपायित करने के माध्यम से रूप में पदावलियों की रचना हुई।

गोविंददास, ज्ञानदास, नरोत्तमदास, बलरामदास और घनश्यामदास की रचनाओं को गीत साहित्य का रत्न माना जा सकता है। ये सभी चैतन्य उत्तर युग में हुए। अनेक लोग चंडीदास के पदों को सर्वोत्कृष्ट वैष्णव गीति रचना का नमूना मानते हैं। किंतु चंडीदास के बारे में विवाद है। विद्वानों की राय है कि इस नाम के अनेक कवि संभव हैं। इनमें से एक ने विख्यात **श्रीकृष्ण कीर्तन** की रचना की जो चैतन्य के पहले की कृति है। एक या दो या और अधिक चंडीदास चैतन्य के बाद की अवधि में हुए। यहां इस विवाद के ब्यौरे में पड़ने की आवश्यकता नहीं।

चैतन्य के बाद लगभग साढ़े-तीन शताब्दियों तक अनेकानेक पद-कर्ताओं ने वैष्णव पदावलियों की रचना की और बांग्ला साहित्य अपूर्व मात्रा में समृद्ध हुआ। चैतन्य मतानुयायी कवियों ने अगणित पदों और गानों की रचना की। इन कवियों की संख्या भी अगणित है। पदावली रचना के मात्राधिक्य का ज्ञान इस तथ्य से हो जाता है कि गौर पद तरंगिणी शीर्षक संग्रह में 1,500 से अधिक पद थे। यह केवल चुने हुए पदों की संख्या है, समग्र की नहीं।

बांग्ला साहित्य का चैतन्य मतोन्मुख साढ़े-तीन सौ वर्षों की अवधि दो प्रमुख दौरों में बांटी जा सकती है। पहला दौर सोलहवीं शती के आरंभ से लकर 17वीं शती के अंत तक है और दूसरा दौर 17वीं शती के अंत से लेकर 19वीं शती के मध्य तक रहा।

पहले दौर में अधिक प्रकाशमान वैष्णव पदावली की रचना हुई। विवादास्पद चंडीदास के अतिरिक्त इस अवधि के सर्वोत्कृष्ट पद-कर्ता संभवतः गोविंददास थे। वह वृंदावन के तत्कालीन अग्रणी गोस्वामी जीव के समकालीन थे। गौडीय वैष्णवों के मान्य नेता जीव गोस्वामी को गोविंददास द्वारा रचित पदों का श्रवण अत्यंत प्रिय था। उन्होंने गोविंददास को अनेक प्रशंसापरक पत्र लिखे। इनमें से कुछ पत्र भक्ति रत्नाकर

में दिये गये हैं। **भक्ति रत्नाकर, प्रेम-विलास, करणानंद** आदि पुस्तकों में पद-कर्ता के रूप में गोविंददास की उच्च स्थिति का वर्णन है।

पदावली साहित्य का दूसरा दौर सत्रहवीं शती के अंत से 19वीं शती के मध्य तक रहा। इस दौर की पद्य-रचना गुण की दृष्टि से पूर्ववर्ती दौर की रचनाओं जितनी उत्कृष्ट नहीं है। इस अवधि की वैष्णव काव्य-रचनाओं में कृष्णकमल गोस्वामी-कृत **दिव्योन्माद** को सर्वोत्तम माना जाता था।

इस प्रकार चैतन्य मत पूरे साढ़े-तीन सौ वर्षों तक इस समग्र पद-रचना का अद्वितीय प्रेरणा स्रोत रहा। वैष्णव जीवनचरितों और पदों की कुल मात्रा से यह सरलता से समझ में आ जाता है कि चैतन्य मत के प्रभाव से बांग्ला साहित्य किस परिणाम से समृद्ध हुआ।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने वैष्णव पदावली साहित्य की विशाल मात्रा में रचना पर यह बात सही ही कही है — 'पद-गानों की परीक्षा से यह प्रकट होता है कि उन दिनों हर वैष्णव पद लिखने का प्रयत्न करता था और अस्तित्व के संघर्ष में केवल सर्वोत्तम पद ही बच पाये।'

विख्यात विद्वान के इस कथन से यह कल्पना की जा सकती है कि चैतन्य मत में किस प्रकार मतानुयायियों में सृजन-भाव को उद्दीप्त किया। गौडीय वैष्णव पदावली साहित्य के विषय को समाप्त करने के पूर्व स्मरणीय महामहोपाध्याय द्वारा उठायी गयी एक और बात का उल्लेख आवश्यक है।

इतने अधिक पद-कर्ताओं द्वारा चैतन्य का आध्यात्मिक व्यक्तित्व जिनके लिए जीवंत प्रेरणा-स्रोत था, अगणित पदों की रचना की गई। किंतु अनेक विद्वानों की राय है कि गुरु ने स्वयं कोई पद संभवत: नहीं रचा किंतु पंडित हरप्रसाद शास्त्री की इस संबंध में भिन्न राय है :

'कहा जाता है कि चैतन्य स्वयं पद-कर्ता थे और 'ऐ रे जगाई मधाई ए हरिनामे मातवी जदि ए', यह सुंदर गान उनका रचा बताया जाता है। भक्ति-भाव की गहराई और विचारों की व्यापकता महान सुधारक के अयोग्य नहीं है।'

हालांकि चैतन्य की संस्कृत में **शिक्षाशतक** की रचना को श्रेय दिया जाता है। यह नीचे दिया जा रहा है, बाद में इसका हिंदी अनुवाद भी है :

चेतो दर्पणमार्जनम् भवमहादावाग्निर्वापणम्
श्रेय: कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधुजीवनम्।
आनंदाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्री कृष्णसंकीर्तनमं ॥ 1 ॥

नाम्नामकारी वहुधा निज सर्वशक्ति —
स्तत्रार्पिता नियमित: स्मरणे न काल: ।
एतादृशी तव कृपा भवनम् ममापि
दुर्दैवमीदृश मिहाजनी नानानुरागा: ॥ 2 ॥

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीय: सदा हरि: ॥ 3 ॥

न धनं न जनं न सुंदरीं
कविता वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्ति रहैतुकी त्वयि ॥ 4 ॥

अयि नंदतनुज किङ्करं
पतितं मां विषमे भवाम्बधौ ।
कृपया तव पद पङ्कज —
स्थित धूलिसदृश: विचिन्तय ॥ 5 ॥

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलवैर्निचितं वपू: कदा
तव नामगृहणे भविष्यति ॥ 6 ॥

युगयितं निमेषेण चक्षुषा प्राविषयितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्व गोविंदविरहेण में ॥ 7 ॥

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा —
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पतो
मत् प्राणनाथस्थु स एव नापर: ॥ 8 ॥

श्रीकृष्ण संकीर्तन से चेतना के दर्पण का मार्जन होता है, सांसारिक महादावग्नि बुझ जाती है, मनुष्यों के जीवन में श्रेयस्कर होता है, चांदनी की तरह चमक उठता है। यह कांता सम्मत शिक्षा का जीवन है (जिससे मन में भक्ति-रूपी दर्शन और भावना जाग्रत होती हैं)। इससे आनंद के सागर की वृद्धि होती है। इसके प्रतिचरण में पूर्णामृत का

आस्वाद मिलता है, (अर्थात सारी भावनाएं जाग्रत होकर अनुभूत होती हैं)। इससे सर्वेंद्रियों की तुष्टि होती है ॥ 1 ॥

ईश्वर ने निज नाम को बहुधा रूपों (गोविंद, मुकुंद, हरि आदि) में अभिव्यक्त किया है और अपनी सर्व शक्तियां उस नाम को प्रदान की हैं। उसके स्मरण के लिए कोई समय का नियम नहीं है। भगवन, आपकी ऐसी कृपा है लेकिन मेरा दुर्दैव ऐसा है कि अभी भी इस नाम का अनुराग नहीं पैदा हुआ ॥ 2 ॥

तृण की तरह विनयी और वृक्ष की तरह सहिष्णु बनो। अपने मान का ख्याल किए बिना दूसरों को सम्मान दो, सदा हरि का कीर्तन करो ॥ 3 ॥

जगदीश, मेरी कामना न धन की है, न परिजन की, न सुंदरी की, न कंठिता की। मेरी एकमात्र कामना है कि हे ईश्वर, सारे जन्मों में आप में अहेतुकी भक्ति हो ॥ 4 ॥

हे नंद के पुत्र, तुम्हारा यह सेवक विषम संसार सागर में पड़ गया है। कृपया मुझे अपने चरण कमल में स्थित धूलि सदृश समझें ॥ 5 ॥

भगवन, वह दिन कब आयेगा जब आपका नाम-कीर्तन करने से नयनों से अश्रु गिरने लगेंगे। वाणी मुख में भाव-विह्वलता से रुद्ध हो जायेगी, सारा शरीर पुलकित हो उठेगा ॥ 6 ॥

श्री राधा ऊवाच – गोविद के विरह में मुझे पल युग प्रतीत हो रहा है, आंखें निरंतर बरस रही घटा हो गयी हैं, सारा जगत शून्य लग रहा है ॥ 7 ॥

श्री राधा ऊवाच – कृष्ण मुझ दासी को पैरों से कुचलें या मेरा आलिंगन करें, मेरे सम्मुख न आकर दूसरी जगहों पर लंपटता करें, जो कुछ करें, वे कोई और नहीं, मेरे प्राणनाथ ही हैं ॥ 8 ॥

6

चैतन्य मत और कीर्तन संगीत

फिर भी बंगाल का देशी संगीत पूरी मध्यकालीन अवधि में गौडीय वैष्णव पंथ से जुड़ा रहा । बंगाल का कीर्तन संगीत-संस्कृति के क्षेत्र में एक अद्वितीय देन था और चैतन्य द्वारा स्थापित वैष्णव भक्ति की अत्यंत भावनात्मक उपासना से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था । लेकिन यह उल्लेखनीय है कि चैतन्य के प्रकट होने के पहले भी बंगाल में संगीत और वैष्णव पंथ एक दिलचस्प रूप से परस्पर जुड़े हुए थे ।

यह ध्यान में रखना चाहिए की बंगाल में राधा-कृष्ण उपासना विख्यात कवि संगीतज्ञ जयदेव द्वारा चैतन्य के उदय से कम-से-कम तीन सौ वर्ष पहले लोक प्रचलित की गई थी । इस तरह वैष्णव पंथ और बंगाल की संगीत परंपराओं का रिश्ता बारहवीं शताब्दी के अंतिम चरणों में बन गया था, जबकि जयदेव ने सुप्रसिद्ध **गीत गोविंदम** की रचना की थी । बंगाल में चैतन्य-पूर्व वैष्णव पंथ के प्रथम और सर्वप्रमुख अभिलेख वैष्णव जयदेव द्वारा रचे गये गान-रूपी भक्तिपरक पद हैं । जयदेव उत्तर भारत के अंतिम स्वाधीन हिंदू राजा, गौड देश के संगीत प्रेमी और विष्णुपूजक महाराजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे ।

बंगाल में भक्ति और राधा-कृष्ण उपासना का तत्वपूर्ण साहित्यिक रूप में जयदेव की संस्कृत पदावलियों में प्रकट हुआ । **गीत गोविंदम** के गानों में ब्रह्म वैवर्त पुराण की तरह राधा की प्रतिष्ठा के जरिए कीर्तन-पूजा के माधुर्य और ऐश्वर्य, दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति हुई थी ।

जयदेव के इन भक्ति पद गानों के प्रति चैतन्य भी आकृष्ट थे । वे **गीत गोविंदम** के बड़े प्रशंसक थे और उन गानों का श्रवण उन्हें बहुत प्रिय था । वे जयदेव की रचनाओं के प्रति केवल आकृष्ट हुए थे, ये रचनाएं नवद्वीप के युवा संन्यासी द्वारा शुरू किये गये गौडीय वैष्णव पंथ के लिए प्रेरणा-स्रोत मानी जाती थीं । जयदेव के गान मानवीय आकांक्षा के रूप में अभिव्यक्त थे पर उनमें ईश्वरानुभूति के लिए वास्तव में तीव्र भक्तिपरक अभिलाषा निहित थी । इस रूप में जयदेव की राधा-कृष्ण उपासना-उन्मुख पदावलियों ने चैतन्य द्वारा प्रचारित गौडीय वैष्णव पंथ की उपासना प्रवृत्तियों को

प्रभावित किया।

जयदेव के बाद बंगाल के वैष्णव पंथ की प्रबंध संगीत की अपनी परंपराएं स्थापित होने लगीं। जयदेव की संगीत-काव्यात्मक प्रतिभा ने बंगाल में राधा-कृष्ण उपासना को इतना जनप्रिय बना दिया था कि बंगाल के वैष्णव पंथ की सभी परवर्ती संगीत रचयिता पीढ़ियों की कल्पना में यह विषय व्याप्त रहा।

जयदेव के बाद वैष्णव पंथ या राधा-कृष्ण उपासना की सर्वाधिक प्रसिद्ध संगीत-रचना वादु चंडीदास की 'श्रीकृष्ण कीर्तन' थी। गीत गोविंदम संस्कृत में था, पर 'श्रीकृष्ण कीर्तन' की रचना बांग्ला भाषा में की गई थी।

वादु चंडीदास मिथिला के विख्यात कवि विद्यापति के समकालीन थे। विद्यापति की पद्यावली को भी बांग्ला ने अपना मानकर अपनाया।

इस तरह बांग्ला भाषा में वैष्णव विषय की प्राचीनतम संगीतात्मक-साहित्यिक रचना वादु चंडीदास की 'श्रीकृष्ण कीर्तन' थी जिसकी रचना चैतन्य के उदय के लगभग एक शताब्दी पहले हुई थी। बंगाल में वादु चंडीदास के 'श्रीकृष्ण कीर्तन' का कृष्ण विषय, या सुनिश्चित रूप में, राधा-कृष्ण तत्व जयदेव के पद-गानों और चैतन्य-उत्तर पदावली कीर्तन गीतों को जोड़ने वाली कड़ी था।

वादु चंडीदास रचित 'श्रीकृष्ण कीर्तन' और उत्तरकालीन कीर्तन-गायकों के युग के बीच में चैतन्य हुए।

नव वैष्णव मत के प्रचारक चैतन्य की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में नाम संकीर्तन की शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता है। चैतन्य द्वारा प्रचलित की गयी सरल और साथ ही सम्मोहक गान विधि सर्वसाधारण में कृष्ण-भक्ति का संदेश पहुंचाने में काफी सफल हुई।

नाम संकीर्तन चैतन्य मत के आंदोलन और उपासना का अंग हो गया।

पहले के कुछ अध्यायों में चैतन्य के नेतृत्व में उनके शिष्यों के सामूहिक भाव-विह्वल कीर्तन गायन की कई घटनाओं का उल्लेख हुआ है। पुरी के रथ-यात्रा समारोह या जन्माष्टमी उत्सव आदि जैसे अवसरों पर शोभा-यात्रा में कीर्तन करती हुई मंडलियां बंगाल में चैतन्य मत का अंग बन गयीं। चैतन्य ने स्वयं अपनी नवद्वीप-लीला में कीर्तन के वृंद-गान और कीर्तन शोभा-यात्रा की शुरुआत की थी।

कीर्तन-गान चैतन्य द्वारा प्रतिपादित धर्म का अंग हो गया और कीर्तन चैतन्य मत से अभिन्न रूप से जुड़ गया। इस तरह का भक्तिपरक गायन चैतन्य मत के प्रचार का वाहन था।

चैतन्य के पूर्व भी किसी-न-किसी रूप में कीर्तन होता था, लेकिन चैतन्य के कीर्तन-गायन के उदाहरण ने इस तरह के संगीत को बहुत लोकप्रिय बना दिया।

यहां तक कि चैतन्य को कीर्तन-गायन का आविष्कारक मान लिया गया। यह ध्यान

में रहे कि कीर्तन और संकीर्तन को एक ही माना जाता था।

राजा प्रताप रुद्र एक बार पुरी में चैतन्य का यह संकीर्तन सुनकर मुग्ध हो गये और उन्होंने राजपंडित से पूछा — "यह कौन-सा संगीत है ?"

पंडित सार्वभौम ने कहा — "चैतन्य देव ने इसकी रचना की है।"

वृंदावनदास ने भी अपने **चैतन्य भागवत** में यह कहा है कि चैतन्य ने कीर्तन का प्रारंभ किया।

अपने इस ग्रंथ में उन्होंने यह वर्णन किया है कि किस तरह चैतन्य हरि कीर्तन-गायन में रत उन्मत्त हो गये। "तब उनके टोले के विद्यार्थियों ने उनसे कहा — 'आचार्य, हम भी आपके साथ कीर्तन करेंगे, लेकिन हमें कीर्तन करना आता नहीं। आप हमें सिखाएं।' तब शची पुत्र ने स्वयं उन्हें सिखाया — 'हरये नमः, कृष्ण यादवये नमः। गोपाल, गोविंद, राम, श्री मधुसूदन।' आचार्य ने स्वयं ताल देकर (शिष्यों को कीर्तन की) रीति बताई और उनके साथ कीर्तन किया।"

वृंदावनदास के उपर्युक्त वर्णन से यह समझा जा सकता है कि चैतन्य कीर्तन संगीत के निदर्शक थे। वे न केवल इसके गायन की, बल्कि इसके लय के अनुसरण की भी शिक्षा दे सकते थे।

उनके कारण नवद्वीप की जनता कीर्तन या संकीर्तन के प्रति उत्साहित हुई। चैतन्य मत के इतिहास में श्रीवास के आंगन में उनके भाव-विह्वल कीर्तन-गायन का बड़ा महत्व है। वहां वे रात्रि पर रात्रि अपने निकट शिष्यों के साथ संकीर्तन गायन में लगे रहे, जिसके फलस्वरूप गौडीय वैष्णव मत की पहली अनुयायी मंडली नवद्वीप में बनी।

ऐसा भी दृष्टिगत हुआ कि चैतन्य के कीर्तन-गायन के साथ नृत्य भी चलता था। वे श्रीवास के घर में कीर्तन करते हुए धार्मिक भाव-विह्वलता से नाचने लगते थे। चैतन्य की जीवनियों के अनुसार नृत्य कीर्तन संगीत का अंग था। जब उन्होंने उत्कट धार्मिक गान के रूप में प्रतिष्ठा की, तब नृत्य को भी उसका अंगभूत माना गया।

चैतन्य को न केवल स्वयं कीर्तन करना प्रिय था, वे अपने अनुयायियों को भी संकीर्तन में भाग लेते देखना पसंद करते थे। वृंदावनदास ने अपनी **चैतन्य भागवत** में लिखा है कि जब नवद्वीप के भक्त आचार्य की अभ्यर्थना के लिए आये तो उन्होंने उन सबको कृष्ण नाम को महामंत्र के रूप में जपने के लिए तथा 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे' धुन पर नाम संकीर्तन करने के लिए कहा।

चैतन्य ने उन्हें हथेली पर ताली देते हुए — 'हरये नमः, कृष्ण यादवये नमः। गोपाल गोविंदराम श्री मधुसूदन।' कीर्तन करने के लिए कहा।

इस तरह लोग घर घर में कीर्तन करने लगे और फिर यह कस्बे कस्बे में फैल गया। कहा जाता है कि कीर्तन में प्रयुक्त ताल-वाद्य खोल के भी प्रयोग का प्रारंभ चैतन्य ने ही कीर्तन के साथ किया था। खोल (पखावज जैसा ही वाद्य, अंतर यह है कि इसका ढांचा

काठ के बजाय मिट्टी का बना होता है) और मंजीरा (पीतल के बने दो वर्तुल खंड), ये दो बाजे कीर्तन के दौरान साथ बजाये जाते थे। इन दो सरल तालात्मक वाद्यों के साथ कीर्तन संगीत साधारण-जनों की पहुंच के भीतर था जिनके बीच चैतन्य मत का संदेश इस प्रकार के भक्तिपरक गायक के माध्यम से पहुंचा। गायन से एक सरल किंतु मनोहारी प्रकार के रूप में कीर्तन संगीत सुदूर गांवों में भी हो सकता था, इसलिए चैतन्य का मत सरल ग्रामीण-जनों के बीच भी प्रचलित हुआ।

यह पहले उल्लिखित हो चुका है कि चैतन्य किस तरह पुरी में रथ-यात्रा उत्सव के समय अपने अनुयायियों के साथ कीर्तन किया करते थे। गुरु के नेतृत्व में होने वाले इन सामूहिक कीर्तनों का भक्तों के हृदय पर रोमांचकारी भावात्मक और उपासनात्मक प्रभाव पड़ा करता था।

इस तरह चैतन्य ने प्रत्यक्षतः कीर्तन संगीत को जनप्रिय बनाया और यह उनके द्वारा प्रवर्तित वैष्णव मत का अंग बना रह गया। इससे जो प्रक्रिया शुरू हुई वह बाद में शताब्दियों तक चलती रही। चैतन्य मत के साथ कीर्तन का भी विकास और प्रसार होता रहा। जब वैष्णव मत की प्रसार गति तीव्र हुई, कीर्तन संगीत भी पल्लवित हुआ। कीर्तन और चैतन्य मत के संबंधों में कुछ और पहलू भी थे।

पहले के एक अध्याय में यह वर्णन आया है कि गुरु के जीवनकाल में ही नरहरि सरकार और अन्य लोग उन पर पद-रचना करने लगे थे। इनमें से अधिकांश पद कविता-मात्र नहीं थे, बल्कि उन्हें धुनों में बांधा गया था और गाया जाता था। इनके रचनाकार संगीतज्ञ भी थे और वे चैतन्य स्तुति के पदों का गायन करते थे, इस तरह बिल्कुल शुरू से ही चैतन्य मत का संगीत से बहुत निकट संबंध हो गया था।

तदुपरांत अनेक पद-कर्ताओं द्वारा रचे गये अनेकानेक पद कीर्तन संगीत की ही रीति में गायन के लिए रचे गये थे। इन वैष्णव पदावलियों में कृष्ण या चैतन्य की लीलाओं का वर्णन किया गया था।

चैतन्य के बाद और उनके द्वारा प्रचारित गौडीय वैष्णव मत के आदर्शों के फलस्वरूप बंगाल में पदावली कीर्तन का चमत्कारी संगीत सफलता की पराकाष्ठा पर पहुंचा। वैष्णव महाजन पद-कर्ताओं द्वारा पदावली कीर्तन पद्धति की रचना से बंगाली देशी संगीत के इतिहास में एक गौरवमय युग की शुरुआत हुई। जिस तरह गौडीय वैष्णव मत बंगाली हृदय की संपूर्ण भावनात्मक भक्ति से सराबोर है उसी तरह वैष्णव पद-कर्ताओं के पदावली गीतों के मधुर स्वर में भी वही भावनात्मक विह्वलता है। संगीत संस्कृति के क्षेत्र में कीर्तन बंगाल के वैष्णवों की विशेष देन है।

चैतन्य के निधन के आधी शताब्दी बाद परिष्कृत कीर्तन संगीत की शुरुआत इस क्षेत्र के संगीत जगत में महत्वपूर्ण घटना थी। जैसा पहले कहा जा चुका है, चैतन्य ने स्वयं नाम कीर्तन का प्रारंभ किया और इसे जनप्रिय बनाया था। बाद में चैतन्य मत के

विकास के साथ साथ बंगाल में अत्यंत उन्नत कीर्तन पद्धति का विकास हुआ। यह संगीत वैष्णव महाजन पद-कर्ताओं (रचयिताओं) के पदावली कीर्तन नाम से प्रचलित हुआ।

उत्तर बंगाल के राजशाही जिले में पद्मा नदी के तट पर खेतड़ी में होने वाला महान उत्सव कीर्तन संगीत के इतिहास में स्मरणीय घटना है। यहां पर गौडीय वैष्णव मत के वृंदावन के छह गोस्वामियों के बाद तीन नेताओं में से एक(अन्य दो श्रीनिवास आचार्य और श्यामानंद थे) नरोत्तम दास के निर्देश पर पदावली कीर्तन पद्धति की शुरुआत हुई।

खेतड़ी उत्सव सोलहवीं शताब्दी के नवें दशक के मध्य में अर्थात गुरु के निधन के लगभग पचास वर्ष बाद हुआ था। वैष्णव महासम्मेलन में चैतन्य की विधवा विष्णुप्रिया देवी उपस्थित थीं।

इस वैष्णव उत्सव के ऐतिहासिक अधिवेशन में नरोत्तमदास ठाकुर ने भारतीय संगीत की शास्त्रीय ध्रुव-पद पद्धति के राग में विलंबित ख्याल की नव्य रीति शुरू की। नरोत्तम के निर्देश पर निरुपित ध्रुव-पद का अनुसरण करने वाली कीर्तन संगीत की पद्धति में दो भाग थे — अनिबद्ध (अर्थात आलाप्ति या आलाप, जिसमें गीत के शब्दों बिना ही स्वर गायन होता था और जो किसी ताल से बंधा नहीं होता था) और निबद्ध (अर्थात वह भाग जिसमें शब्द और ताल-आधारित धुन का संयोग होता था)।

पदावली कीर्तन के निरुपण में गोकुलानंद अनिबद्ध भाग गाते थे। उनका आलाप उदार, मुदार और ताल — इन तीन गमकों में चलता था। उनकी धुन सुनकर श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। आलाप भाग के बाद श्रीखंड के रघुनंदन ठाकुर नरोत्तमदास ठाकुर को माला पहनाते थे। तबसे कीर्तन गायक को गायन से पहले माला पहनाने की रीति चली आ रही है।

नरोत्तमदास उत्सव में कीर्तन का निबद्ध भाग गाते थे। जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि निबद्ध भाग काव्य पद होता था और शब्द धुन से बंधे होते थे। नरोत्तमदास निबद्ध भाग बहुत अच्छा गाते थे। उन्होंने कीर्तन का एक स्तर निर्मित कर दिया जिसका बाद की पीढ़ियों ने अनुसरण किया।

कीर्तन-गायन में संगत के वाद्य केवल खोल और करताल थे। बाद में भी कीर्तन-गायन में यही दो बाजे साथ चलते रहे। नृत्य भी वहां होने वाले कीर्तन का अंग था। खेतड़ी उत्सव में शास्त्रीय कीर्तन में जुड़ने वाला एक और महत्वपूर्ण पहलू गौर चंद्रिका थी। मुख्य पद के गायन के पूर्व गौर चंद्रिका गाई जाती थी। गौर चंद्रिका गौर अर्थात चैतन्य की स्तुति में रचित पद होता था। तब से पारंपरिक कीर्तन में, सचमुच कीर्तन शुरू होने के पहले, जिसका विषय राधा-कृष्ण लीला होती है, गौर चंद्रिका गायन की रूढ़ि बंध गई है। कीर्तन-गायन चैतन्य मत के विकासमान आंदोलन का अंग बन गया। उसमें गौर चंद्रिका के रूप में गाये जाने के लिए चैतन्य पर अनेकानेक पदों की

रचना हुई ।

चैतन्य पर रचे गये गौर चंद्रिका नाम से ज्ञात पद या गीत कीर्तन-गायन के समय गाने के लिए रचे गये थे । और चंद्रिका का गायन रीति-अनुसार कीर्तन-गायन का अनिवार्य अंग माना जाने लगा । कीर्तन-गायन के समय चैतन्य की प्रेरणा को पुनर्जीवित करने के लिए गौर चंद्रिका मंत्र की तरह था ।

सुप्रसिद्ध नरोत्तमदास ठाकुर के द्वारा खेतड़ी के महान वैष्णव उत्सव में गायन के अनिबद्ध और निबद्ध भाग, गौर चंद्रिका आदि विशेष प्रकारों को जोड़कर पदावली कीर्तन को स्वरूपबद्ध किया गया ।

नरोत्तमदास द्वारा सोलहवीं शती के नवें दशक के मध्य तक सुगठित की गयी कीर्तन-गायन की रीति गरनहाटी या गरेरहाटी कीर्तन प्रकार के रूप में अभिहित हुई । खेतड़ी तब जिस परगना में था, उस समय शायद उसका नाम गरेरहाट रहा हो जिससे इस कीर्तन का यह नाम पड़ गया ।

बाद में मनोहरशाही परगना (जिला बर्दवान), रानीहाटी (जिला बर्दवान), मंदारन (जिला मिदनापुर), झारखंडा (जिला मिदनापुर) आदि से क्रमशः मनोहरशाही, रानेती, मंदारिनी और झारखंडी शैलियां स्थानीय प्रकारों के रूप में विकसित हुईं । इन सभी कीर्तन शैलियों की कुछ अपनी विशेषताएं थीं ।

रानेती और मंदारिनी की धुनें मनोहरशाही की अपेक्षा सरल थीं । मनोहरशाही कीर्तन की धुन का सूक्ष्म शिल्प उल्लेखनीय था ।

कहा जाता है कि श्रीनिवास आचार्य मनोहरशाही और रानेती कीर्तन-गायन शैलियों के जन्मदाता थे ।

ज्ञानदास और बलरामदास जैसे श्रेष्ठ समर्थकों के नेतृत्व वाले पद-कर्ताओं के प्रभाव में मनोहरशाही कीर्तन शीघ्र ही संगीत के क्षेत्र में उच्च स्थान पर पहुंच गया । ये प्रसिद्ध पद-कर्ता पदावली कीर्तन पद्धति की शुरुआत करने वाले नरोत्तमदास के समकालीन थे ।

विख्यात कीर्तन गायक वैष्णवदास (गोकुलानंद सेन) और उनके सहयोगी मित्र उद्धवदास (कृष्णकांत मजूमदार) के द्वारा रानेती शैली का कीर्तन और अधिक समृद्ध हुआ ।

कीर्तन की पांच शैलियों में से झारखंडी शैली अल्पजीवी रही । मूलतः चार प्रमुख शैलियों में गरनहाटी, मनोहरशाही, रानेती और मंदारिनी कीर्तन शैलियों में कतिपय विशेषताएं विकसित हुईं । गरनहाटी शैली की तुलना ध्रुव-पद की सरल किंतु गंभीर पद्धति से की जा सकती है । मनोहरशाही शैली स्वर वैविध्य की दृष्टि से उल्लेखनीय थी । लेकिन आगे चलकर ये भेदकारी विशेषताएं कमोबेश लुप्त हो गयीं ।

पश्चिम बंगाल में दूसरी शैलियों की अपेक्षा मनोहरशाही शैली का कीर्तन-गायन

ज्यादा प्रचलित था।

बंगाल में सोलहवीं शती की अंतिम चौथाई से शुरू होकर अठारहवीं शती के मध्य तक पदावली कीर्तन संगीत का समृद्ध प्रकार रहा। इसी अवधि में चैतन्य मत भी जीवन शक्ति था। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि कीर्तन-गायन गौडीय वैष्णव मत और आंदोलन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी से पदावली कीर्तन-गायन में इसकी ढाई शताब्दी पुरानी समृद्ध परंपरा की तुलना में गिरावट आने लगी।

अठारहवीं शताब्दी में कीर्तन पदों के दो बड़े संकलन तैयार हुए। पहली चौथाई में राधामोहन ठाकुर ने अपने विख्यात **पदामृत समुद्र** का संग्रह किया और कुछ वर्ष बाद वैष्णवदास ने **पद कल्पतरु** नाम से अपना प्रसिद्ध और विशाल संग्रह पूरा किया। इनमें कीर्तन के लिए प्रयोग में आने वाले अधिकांश पदों का संकलन था। कीर्तन-गायन का यशस्वी दौर कुछ और समय तक जारी रहा। अंततः जब चैतन्य मत की जीवंतता समाप्त होने लगी, उन्नीसवीं शताब्दी में कीर्तन का भी प्रभाव समाप्त होने लगा।

यह याद रखना चाहिए कि चैतन्य की प्रगति के साथ विकसित हुई गरनहाटी, मनोहरशाही, रानेती आदि सभी कीर्तन शैलियों का आधेय कृष्ण विषय और राधा-कृष्ण तत्व था। पदावली कीर्तन के वैष्णव महाजन रचयिता कृष्ण के दैवी पक्ष का भक्ति-भाव मूलक चित्रण ही करते थे।

इस तरह जहां तक विषय-वस्तु या कविता पक्ष का संबंध था, पदावली कीर्तन की सारी संगीत रचना का आधार-मात्र कृष्ण विषय था। मधुर, संवेदनशील और परिष्कृत पदावली कीर्तन की संगीत संरचना निबद्धकरण प्रबंध-गान के एक शास्त्रीय प्रकार की थी। इसमें धातु, राग और विभिन्न भाव तत्व शामिल थे। पदावली कीर्तन स्वभावतया आध्यात्मिक था जिसके मूल में चैतन्य मत के आधार पर विकसित राधा-कृष्ण उपासना की तीव्र भक्ति भावना थी।

बंगाल की अद्वितीय और विशेष देन कीर्तन संगीत चैतन्य द्वारा शुरू किये गये कृष्ण आदि आंदोलन की उपज था। बंगाल की संगीत संस्कृति के क्षेत्र में चैतन्य-प्रेरित गौडीय वैष्णव मत की यह ऐतिहासिक भूमिका थी।

संदर्भ सूची

बांग्ला

1. वृंदावनदास – **चैतन्य भागवत,** 1886
2. लोचनदास – **चैतन्य,** 1893
3. कृष्णदास कविराज – **चैतन्य चरितामृत,** 1878
4. नरहरि चक्रवर्ती – **नरोत्तम विलास,** राधारमण प्रेस संस्करण, मुर्शिदाबाद, 1925
5. नरहरि चक्रवर्ती – **भक्ति रत्नाकर,** राधारमण प्रेस संस्करण, मुर्शिदाबाद, 1925
6. नित्यानंददास – **प्रेम विलास,** राधारमण प्रेस संस्करण, मुर्शिदाबाद, 1911
7. दिनेशचंद्र सेन – **बंग भाषा ओ साहित्य,** 1901
8. दिनेशचंद्र सेन – **बृहत बंग,** भाग 2, 1935
9. दिनेशचंद्र सेन – **गोविंददास,** 1926
10. दिनेशचंद्र सेन एवं खगेंद्रनाथ मित्र – **वैष्णव पदावली,** 1945
11. शिशिर कुमार घोष – **अमिय निमाई चरित,** भाग 1-6
12. शिशिर कुमार घोष – **नरोत्तम चरित,** 1906
13. शिशिर कुमार घोष – **प्रोबोधानन्द ओ गोपाल भट्ट,** 1923
14. रसिक मोहन विद्या भूषण – **गोम्भीरे श्री गौरांग,** 1910
15. जगद्बंधु भद्र – **गौर पद तरंगिणी,** 1902
16. अमूल्यधन राय भट्ट – **बृहत वैष्णव चरिताभिधान,** 1924
17. बिपिन बिहारी दासगुप्त – **महाप्रभुर लीलावासन,** 1929
18. खगेंद्रनाथ मित्र – **कीर्तन,** 1945
19. अच्युतचरण चौधरी – **गौरांगेर पूर्वांचल परिभ्रमण,** 1922
20. बिमान बिहारी मजूमदार – **श्री चैतन्य चरितेर उपादान,** 1939
21. बिमान बिहारी मजूमदार – **गोविंददासेर पदावली ओ ताहार युग,** 1961
22. बिमान बिहारी मजूमदार – **पंचशत वत्सरेर पदावली,** 1962
23. बिमान बिहारी मजूमदार – **षोडश-शतावदिर पदावली साहित्य,** 1961
24. सुंदरानंद विद्या विनोद – **श्री चैतन्यदेव,** 1950
25. मधुसूदन वाचस्पति – **गौडीय वैष्णव इतिहास**

26. हरे कृष्ण मुखोपाध्याय, संपादक – **पदावली परिचय,** 1966
27. हरे कृष्ण मुखोपाध्याय – **चैतन्येर समयेर नवद्वीपेर स्थिति-स्थान बनाम** मिआंपुर, **1934**
28. हरे कृष्ण मुखोपाध्याय – **चंडीदास पदावली,** 1934
29. हरे कृष्ण मुखोपाध्याय, संपादक – **ज्ञानदासेर पदावली,** 1956
30. हरे कृष्ण मुखोपाध्याय, संपादक – **रसकल्पवल्ली ओ अन्यान्य निबंध**
31. सतीशचंद्र राय, संपादक – **पदकल्पतरू,** भाग 1-5
32. अचिंत्य कुमार सेनगुप्त – **अखंड अमिय श्री गौरांग**
33. अचिंत्य कुमार सेनगुप्त – **गौरांग परिजन**
34. शारदाचरण मित्र – **नीलाचले श्रीकृष्ण चैतन्य**

अंग्रेजी

1. दिनेशचंद्र सेन – **चैतन्य एंड हिज कांटेम्पोरेरीज,** 1917
2. दिनेशचंद्र सेन – **वैष्णव लिटरेचर आफ मेडीवल बंगाल,** 1917
3. दिनेशचंद्र सेन – **चैतन्य एंड हिज ऐज,** 1922
4. हरप्रसाद शास्त्री – **वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ बंगाल बिफोर द इंट्रोडक्शन आफ इंगलिश एजूकेशन,** 1891
5. एस. के. डे – **अर्ली हिस्ट्री आफ द वैष्णव फ़ेथ एंड मूवमेंट इन बंगाल,** 1942
6. मेलविल टी. केनेडी – **चैतन्य मूवमेंट,** 1925

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित